॥ ॐ ॥

क्रियावाद

लेखक —

जैन धर्म दिवाकर जैनागम रत्नाकर आचार्य श्री आत्माराम जी
महाराज के सुशिष्य संयममूर्ति श्री खजानचन्द महाराज जी
तच्छिष्य पं० रत्न श्री फूलचन्द जी महाराज 'श्रमण'

सम्पादक :—

प्रखरवक्ता पण्डितरत्न श्री मनोहर मुनि जी "कुमुद"

पुस्तक
क्रिया वाद ।
लेखक
मुनि फूलचन्द 'श्रमण' ।
सम्पादक
श्री मनोहर मुनि जी कुमुद ।
प्रकाशक
श्री आत्मा राम जैन शिक्षा निकेतन लुधियाना।
द्रव्य दाता
रामा जैन हौजरा माधोपुरी लुधियाना।
मुद्रक
राजकुमार दी सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, लुधियाना।
प्रथम प्रवेश
मार्गशीर्ष, वीर सं० २४८८,
१ दिसम्बर सन् १९६१
मूल्य ।।।)

प्राक्कथन —

धर्म प्रिय गुण जनो ! यह विश्व विष और पीयूष दानो से परिपूर्ण है ज्ञानी जन विष का परित्याग करते हैं, पीयूष का ग्रहण करते हैं जब कि अज्ञानी जन पीयूष को तो अभी तक भी नहीं ढूढ पाए वे तो केवल मधुर विष को ही पीयूष समझ कर ग्रहण करते हैं और कटु विष को ही विष समझ कर परित्याग करते हैं। ज्ञानी जन मधुर विष को भी कटु विष की तरह छोड देते हैं। जैसे प्रवाह जल, डूबने वाले व्यक्ति को डुबाने के लिए पूर्णतया सहयोग देता है। वैसे ही वही तैराक को तैरने के लिए भी सहयोग देता है। इस विश्व में ज्ञानी जन जहां उन्नति, उत्थान सुख, विकास, त्याग, क्षय संवर, निर्जरा, पाप से निवृत्ति और धर्म में प्रवृत्ति करते हैं वहां अज्ञानी जन अवनति, पतन दु ख ह्रास, भोग प्रय आस्रव बन्ध धर्म से निवृत्ति और पाप मे मे प्रवृत्ति करते हुए देखे जाते हैं। इस का मूल कारण क्रियावाद और अक्रियावाद ही है जिसे अस्तिवाद और नास्तिवाद भी कहते हैं। जिसे सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन भी कहते हैं। इस क्रियावाद को आगत प्रकाश भी कहते हैं। यह ज्ञान की प्रबलता और मोह की मंदता से उत्पन्न होता है। इसी प्रकाश पुज के द्वारा आत्मा मोक्ष की ओर अग्रसर होता है तथा मोह अन्धकार सर्वथा विलय हो जाने से ही आत्मा अपूर्ण से पूर्ण हो सकता है पूर्णता का नाम ही दूसरे शब्दो में कैवल्य है। जैन धर्म मानता है जब कृष्ण पक्षी जीव मार्गानुसारी बनता है तभी से

वह क्रियावादी बन जाता है। मार्गानुसारी बनना ही प्रगति का पहला कदम है, मार्गानुसारी सम्यक्त्व के अभिमुख जीव को कहते है। जो सम्यक्त्वी है वह निश्चय ही आस्तिक हैं। आस्तिक नास्तिक की परिभाषा सम्यक्तया समझे बिना इन्सान भ्रान्ति मे ही रहता है। कुछ एक व्यक्ति नास्तिक होते हुए भी अपने आप को आस्तिक कहलाते हैं। उस से विपरीत आस्तिक को भी नास्तिक पद से कलङ्कित करते है। इस का मूल कारण है उस की परिभाषा से अपरिचित रहना।

अस्तिवाद और नास्तिवाद का स्वरूप जितना सुस्पष्ट एव सुविस्तृत जनागमों मे मिलता है उतना अन्य किसी ग्रन्थ पन्थ मे नही। जनेतर ग्रन्थों मे अगर कहीं अस्तिवाद और नास्तिवाद का उल्लेख मिलता भी है तो वह स्वमान्य देव गुरु धर्म एव शास्त्र तक ही सीमित है अर्थात् उन पर श्रद्धान रखने वाला आस्तिक है और उन से विपरीत श्रद्धा रखने वाले को नास्तिक कहते है। प्रस्तुत पुस्तक के पहले परिच्छेद मे आस्तिक वाद का निरूपण भगवान महावीर के मुखारविन्द से झरते हुए कुछ एक अमृत बिन्दुओ से पाठक गणो को पता चल जाएगा कि उन पीयूष बिन्दुओ मे साम्प्रदायिकता की गन्ध तक भी नही है। पक्षपात, एवं साम्प्रदायिकता से रहित आस्तिक के लक्षण औपपातिक सूत्र मे वर्णित हैं। उन्ही का आधार लेकर आस्तिक वाद को सिद्ध किया है। जिस को दूसरे शब्दों मे क्रियावाद भी कहते हैं।

'क्रियावाद" समझने से पहले अक्रियवादियों की मान्यता को समझना भी बहुत कुछ अनिवार्य है। शुभ व्यापार न करना, तथा अशुभ व्यापार मे सतत सलग्न रहना यह है अक्रियवादियों का जीवन। अक्रियावादी वे होते हैं जिन मे निम्नलिखित विशेषण घटित हों।

नास्तिकवादी नास्तिक प्रज्ञ नास्तिक दृष्टि, जो जीव अजीव पुण्य पाप आश्रव संवर बंध निर्जरा मोक्ष इन नवतत्वों का अपलाप करते हैं इहलोक नहीं परलोक नहीं, माता पिता नहीं बलदेव वासुदेव नहीं चक्रवर्ती नहीं, अरिहंत एवं सिद्ध नहीं नरक स्वर्ग भी नहीं उन में रहने वाले नारकी देव भी नहीं धर्म अधर्म भी नहीं शुभाशुभ कर्मों का सुफल तथा दुष्फल भी नहीं जो हिंसा झूठ चोरी मैथुन परिग्रह में नितांत आसक्त हैं। ऐसी मान्यता-बुद्धि दृष्टि जिन की हैं वे अक्रिया-वादी कहलाते है ।

कभी २ विशेष युक्ति समझने के लिए किसी विशेष ज्ञानी के सम्मुख सम्यग्दृष्टि भी संवाद करते समय आत्मा जैसी सन्वस्तु को नास्ति कहने लग जाता है । परन्तु वह वचन मात्र ही होता है क्योंकि उस की प्रज्ञा में आस्तिकता है । कभी कभी शंका आदि ५ अतिचारों से सम्यक्त्व दूषित हो जाने के कारण प्रज्ञा में भी नास्तिकता का उद्भव होने लग जाता है इसी कारण तीसरा नास्तिक दृष्टि विशेषण दिया है। जिस की दृष्टि ही नास्तिकता से ओत प्रोत है वह निश्चय ही नास्तिकप्रज्ञ है । जो नास्तिकवादी है वह निश्चय ही अक्रियावादी है । जो अक्रियावादी, वह मिथ्या दृष्टि है ।

श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी जी ने दशाश्रुत स्कंध की छटी दशा में अक्रियावादी तथा क्रियावादी का सविस्तर वर्णन किया है ।

स्थानाङ्ग सूत्र में अक्रियावादी के आठ भेद बतलाए हैं। जैसे कि —

अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता तंजहा

वह क्रियावादी बन जाता है। मार्गानुसारी बनना ही प्रगति का पहला कदम है मार्गानुसारी सम्यक्त्व के अभिमुख जीव को कहते हैं। जो सम्यक्त्वी है वह निश्चय ही आस्तिक है। आस्तिक नास्तिक की परिभाषा सम्यक्तया समझ बिना इन्सान भ्रांति में ही रहता है। कुछ एक व्यक्ति नास्तिक होते हुए भी अपने आप को आस्तिक कहलाते हैं। उस से विपरीत आस्तिक को भी नास्तिक पद से कलंकित करते हैं। इस का मूल कारण है उस की परिभाषा से अपरिचित रहना।

आस्तिवाद और नास्तिवाद का स्वरूप जितना सुस्पष्ट एवं सुविस्तृत जैनागमों में मिलता है, उतना अन्य किसी ग्रन्थ पन्थ में नहीं। जैनेतर ग्रन्थों में अगर कहीं आस्तिवाद और नास्तिवाद का उल्लेख मिलता भी है तो वह स्वमान्य देव गुरु धर्म एवं शास्त्र तक ही सीमित है अर्थात् उन पर श्रद्धान रखने वाला आस्तिक है और उन से विपरीत श्रद्धा रखने वाले को नास्तिक कहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के पहले परिच्छेद में आस्तिक वाद का निरूपण भगवान महावीर के मुखारविन्द से झरते हुए कुछ एक अमृत बिन्दुओं से पाठक गणों को पता चल जाएगा कि उन पीयूष बिन्दुओं में साम्प्रदायिकता की गन्ध तक भी नहीं है। पक्षपात, एवं साम्प्रदायिकता से रहित आस्तिक के लक्षण औपपातिक सूत्र में वर्णित हैं। उन्हीं का आधार लेकर आस्तिक वाद को सिद्ध किया है। जिस को दूसरे शब्दों में क्रियावाद भी कहते हैं।

'क्रियावाद" समझने से पहले अक्रियवादियों की मान्यता को समझना भी बहुत कुछ अनिवार्य है। शुभ व्यापार न करना, तथा अशुभ व्यापार में सतत संलग्न रहना यह है अक्रियवादियों का जीवन। अक्रियावादी वे होते हैं जिन में निम्नलिखित विशेषण घटित हों।

नास्तिकवादी नास्तिक प्रज्ञ नास्तिक दृष्टि, जो जीव अजीव पुण्य पाप आश्रव संवर बंध निर्जरा मोक्ष इन नवतत्वो का अपलाप करते है इहलोक नहीं परलोक नहीं, माता पिता नही बलदेव वासुदेव नही चक्रवर्ती नही, अरिहंत एवं सिद्ध नही नरक स्वर्ग भी नही उन मे रहने वाले नारकी देव भी, नहीं धर्म अधर्म भी नही शुभाशुभ कर्मो का सुफल तथा दुष्फल भी नही जो हिंसा झूठ चोरी मैथुन परिग्रह मे नितान्त आसक्त है। ऐसी मान्यता बुद्धि दृष्टि जिन को है वे अक्रिया-वादी कहलाते हैं।

कभी २ विशेष युक्ति समझने के लिए किसी विशेष ज्ञानी के सम्मुख सम्यग्दृष्टि भी संवाद करते समय आत्मा जैसी सद्वस्तु को नास्ति कहने लग जाता है। परन्तु वह वचन मात्र ही होता है क्योकि उस की प्रज्ञा मे आस्तिकता है। कभी कभी शका आदि ५ अतिचारो से सम्यक्त्व दूषित हो जाने के कारण प्रज्ञा मे भी नास्तिकता का उद्भव होने लग जाता है इसी कारण तीसरा नास्तिक दृष्टि विशेषण दिया है। जिस की दृष्टि ही नास्तिकता से ओत प्रोत है वह निश्चय ही नास्तिकप्रज्ञ है। जो नास्तिक वादी है वह निश्चय ही अक्रियावादी है। जो अक्रियावादी, वह मिथ्या दृष्टि है।

श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी जी ने दशाश्रुत स्कंध की छटी दशा मे अक्रियावादी तथा क्रियावादी का सविस्तर वर्णन किया है।

स्थानाङ्ग सूत्र में अक्रियावादी के आठ भेद बतलाए हैं। जैसे कि —

अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता तंजहा

एगावाई, अणेगावाई, मितवाई, णिम्मितवाई, सायवाई समुच्छेदवाई, णिययाई, न सतिपरलोगवाई ॥८॥

इन की व्याख्या पाठकगण वहीं देखें। यहा इन्हा की व्याख्या करना अप्रासगिक है ।

क्रिया शब्द की व्याख्या

जन परिभाषा म क्रिया शब्द की आस्तिक्य कम बन्धन हेतु, गति परिस्पन्दन विवेकहीन चारित्र और सम्यक चारित्र इत्यादि अर्थों मे प्रयोग किया जाता है। उस क्रियावाद को मानने वाला क्रियावादी कहलाता है। वह नियमेन भव्य होता है और शुक्ल पक्षी भी। वह ससार मे देशोना अद्ध पुदगल परावतन से अधिक वास नही कर सकता वह अवश्यभावी सिद्धि गति को प्राप्त करने वाला होता है। फिर चाहे वह सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि ।

आत्मविकास का सब प्रथम सोपान, सम्यग्दशन है तत्वाथ श्रद्धान सम्यग्दशनम्' नवतत्वो पर शुद्ध श्रद्धान करना ही सम्यग्दशन कहलाता है दूसरे शब्दो मे उसे आस्तिकता भी कह सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक मे सब प्रथम आस्तिकता सिद्ध करने के लिए लक्षण एव आगम प्रमाण दिए हैं।

कम ब धन हेतु को भी क्रिया कहते हैं। हिंसा असत्य चोरी कुशील और तृष्णा से जो अशुद्ध प्रवृत्ति होती है। वह आश्रव कहलाता है। आश्रव तीन प्रकार का होता है अशुद्ध अशुभ और शुभ ये सब कम बध के ही कारण हैं मोहोदय से आत्मा सवदा क्रियावान ही होता है। क्रिया के बिना कर्म बन्धन नही होता इस का विशेष वणन दूसरे परिच्छेद मे किया गया है ।

तीसरे परिच्छेद मे मिथ्या चारित्र का वर्णन किया गया है। मिथ्या एव विवेक हीन चारित्र कर्म बन्धन से छूटने का उपाय नही है परमशान्ति एव निर्वाण का कारण नही है अर्थात् क्रिया कर्म बन्धन रूप ताले (फन्दे) को खोलने के लिए चाबी नही है इस शुष्क क्रिया की आराधना मिथ्यादृष्टि क्रियावादी ही करते हैं। व सम्यग् ज्ञान और सम्यग्दर्शन को मुक्त होने के लिए अकिंचित्कर मानते हैं।

उन का कहना है कि चारित्र ही सर्वे सर्वा है उसे छोड़ कर ज्ञान दर्शन मे समय व्यतीत करना सिर्फ कालक्षेप ही है कहा भी है —

क्रिया विरहित हत ! ज्ञायमान मनर्थकम्।
गति बिना पथज्ञोऽपि नाप्नोति पुर मीप्सितम् ॥

मार्ग जानता हुआ भी जैसे चल बिना उद्देश्य स्थान में पहुचना अशक्य है वैसे ही क्रिया के बिना ज्ञान सिर्फ अनर्थ का हेतु है।

चौथे परिच्छेद मे सम्यक् चारित्र का वर्णन किया गया है। सम्यक् क्रिया दो प्रकार की होती है —

१—एक प्रमत्त योग मे धर्मानुष्ठान करना।
२—दूसरा अप्रमत्तयोग से धर्मानुष्ठान करना।

पहला सराग सयम कहलाता है और दूसरा वीतराग सयम। सम्यग्दर्शन सम्यग ज्ञान, तो चारित्र विशुद्धि के कारण हैं। विशुद्ध चारित्र मोक्ष का कारण है।

जैसे दीपक का स्वप्रकाश भी तेलपूर्ति आदि की अपेक्षा रखता है इसी प्रकार सम्यग ज्ञानी को भी क्रिया अपेक्षित है

"क्रिया हि वीर्यशुद्धिहेतु भवति"

अशुद्ध वीर्य से आत्मा संसार मे परिभ्रमण करता है। शुद्ध वीय स सवरी बनता है। कर्मप्रदेशा का ग्रहण योगा से होता है, यागवीय प्रभव है। जब सवृतात्मा वन्दन ध्यान समाधि स्वाध्याय आवश्यक आदि मे प्रवृति करता है तब कर्मो का ग्रहण नही हो सकता क्यो कि कहा भी है।

"योगाना सत् प्रवृति क्रिया"

जा क्रिया का निषेध करके सिर्फ ज्ञान मात्र मे सिद्धि मानते है वे मानो कवल क्षप के बिना ही तृप्ति चाहत हैं।

ज्ञानी क्रियोद्यत शान्तो भावितात्मा जितेन्द्रिय
स्वय तीर्णो भवाम्भोध परं तारयितु क्षम ॥

जो क्रियापरायण शान्त भावितात्मा एव जितेन्द्रिय है वही ज्ञानी ससार समुद्र स पार हाते हैं वही दूसरे का तारने मे समर्थ है। वास्तव म ज्ञानी व ही है जो ज्ञान का क्रियान्वित करते हैं।

विवेक हीन अज्ञानियो की तपस्या भी कम बध का कारण ही होती है जसे कि कहा भी है —

मासे मासे तु जा वालो कुसग्गेण तु भु जए
न सो सुयक्खायधम्मस्स कल अग्घइ सोलसिं

अथ-अज्ञानी जीव महान २ कुशाग्र मात्र आहार करता हुआ भी केवलिभाषित सर्वविरतिरूप धम की सोहलवी कला को भी प्राप्त नही कर सकता। अत सिद्ध हुआ सम्यग् ज्ञान दर्शन

पूवक क्रिया हो मोश मा .र तक पहुचाने में परम सहायक हो सकती है ।

उतरा०म०९वा, गा० ४४

सात नया की अपेक्षा स क्रिया शब्द की व्याख्या नगम एव सग्रह नय की अपेक्षा स ससारी जीव १४वें गुण स्थान को छाड कर सभी गुणस्थाना म सदा सवदा सक्रिय ही हैं, ऐसा कोई समय नहीं है जिस मे जीव निष्क्रिय हों इन की दृष्टि से ससारी सभी जीव सक्रिय ही हैं ।

व्यवहार नय की अपेक्षा से शरीर पर्याप्ति के पश्चात् ही जीव सक्रिय होता है, क्यो कि व्यावहारिक शरीर के हाने हुए हा जीव का क्रियावान होना अनुभव सिद्ध हो सकता है। ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा स— शुभा शुभ काय साधन के लिये वीय परिणाम रूप योग प्रवृतिवाला जीव ही सक्रिय होता है ।

शब्द नय की अपेक्षा स—मूल गुण तथा उत्तर गुण साधनरूप स्व कत्तव्य परायणता को क्रिया कहत हैं अर्थात् सम्यक्चारित्र की निरतिचार पालन करते हुए जीव को ही सक्रिय कह सकत है ।

समभिरूढ नय की अपक्षा से—धनघातिकर्मों का जिस क्रिया स सवथा क्षय हो उस क्रिया कहत हैं । वह क्रिया यथा ख्यात चारित्र मे हा हो सकती है । वह क्रिया भी आत्म वीय से ही हा सक्ती है । उस क्रिया मे जो परिणमन हा रहा है अत वह जीव भी सक्रिय होता है ।

एव भूत नय की अपेक्षा से—जिस क्रिया मे कवली समुद्घात हा या जिस क्रिया से अ तक्रिया हो या जिस क्रिया स जीव १४ वें गुणस्थान मे पहु चे उसे क्रिया कहते हैं । इसी क्रिया से योग निरूधन होता है उसी आत्मा को ही क्रियावान कहते हैं । अ तिम दो नय, शुक्लध्यान म प्रविष्ट होन का ही क्रिया कहते हैं ।

लेखक को प्रेरणा कहा से मिली

ससार का कोई भी काय चाहे वह छोटा हो अथवा बडा हो प्रेरणा के बिना नही होता। प्रत्येक व्यक्ति प्रेरणा म प्रभावित होकर अपना काय करता है। लेखक को अपनी लेखनी चलाने के लिय भी प्ररणा की आवश्यकता है जो कि उसके विचारा को जागृति प्रदान कर सके।

विक्रम सम्वत् २०१० को भीनासर म एक विशाल साधु सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन म अन्य २ अनेक स्थाना से मुनि गण पधारे। साधु सम्मेलन में यह विचार उपस्थित हुए कि कोई ऐसी पुस्तक बनाई जाये जिस का विषय अति-सुन्दर और सभी के लिये उपयोगी हो। आचाराग सूत्र म आत्म-वाद-कमवाद क्रियावाद और लोकवाद इन चार वादा का निर्देश किया गया है। साधु सम्मेलन के विज्ञ मुनिया ने इन्ही चार वादों पर कुछ निबन्ध लिखवा कर एक पुस्तक का निर्माण करने का कहा। इस के विषय म लिखने क लिए कई मुनिया को कहा गया जिन म मेरा भी एक नाम रखा गया और मुझे एसे शुभ अवसर पर पुस्तक लिखने की प्ररणा भीनासर साधु सम्मेलन से प्राप्त हुई।

सम्मेलन का ओर से हम यह निर्देश मिला कि अपने २ निबन्ध तयार करके उपाध्याय कविरत्न मुनि श्री अमर चन्द जी म० को दे दिये जाय जो कि इन का सम्पादन कर। मने अपना निबन्ध तयार करके

कवि रत्न जी के चरणो में भेज दिया किन्तु अन्य मुनियो के निबन्ध न पहुचने पर मेरा निबन्ध लौटा दिया गया। मैंने इस निबन्ध को छपवाने का विचार किया और सम्पादन के लिये श्री मनोहर मुनि जी को सौंप दिया। उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस का सम्पादन किया और आज वही निबन्ध पुस्तक के रूप मे आप के कर कमलो मे उपस्थित है।

अन्त में मै श्री मनोहर मुनि 'कुमुद' जी का धन्यवाद किये बिने नही रह सकता जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस पुस्तक का सम्पादन किया है। इस के अतिरिक्त श्री मगत राय जी का भी मैं अति आभारी हू जिन्होंने समय २ पर प्रकाशन म सहयोग दिया।

मुनि फूलचन्द "श्रमण"

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक का नाम है 'क्रियावाद', यह सयम और सत्य की सजीव मूर्ति श्री फूलचन्द जी महाराज 'श्रमण' जी की अद्वितीय, अनुपम और अलौकिक रचना है। इस से पूर्व आप श्री जी की नयनाभिराम कृति नयवाद के पठन पाठन तथा अवलोकन से भी आप (पाठको) के अभिराम नयन कृतकृत्य हो चुके है। यह क्रियावाद' कृति भी नयवाद की सहोदरी ही समझिये। नयवाद मे आप श्री जी ने अनेकान्तवादी विराट हृदय जैन धर्म क सप्त नया की एक दिव्य भाकी उपस्थित की है और उपाध्याय कविरत्न श्री अमर मुनि जी महाराज के शिष्य श्री विजय मुनि जी की निपुण और चतुर लेखनी क मसाला ने इस और भी चार चाद लगा दिये हैं।

इस क्रियावाद पुस्तक मे अस्तु हमारे आदरणीय लेखक श्रमण जी ने 'क्रिया शब्द का लक्ष्य बना कर उसके चार भावो, अर्थो अभिप्राया अथवा दृष्टिया को ले कर उसका सविस्तार निरूपण किया है।

इस पुस्तक के प्रथम परिच्छेद म क्रिया शब्द को लेकर आस्तिक और नास्तिक की समीक्षा की गई है। इस मे एक एसा मीटर या कसौटी बनाई गई है जिस स आस्तिक नास्तिक का निणय सरल रीति से किया जा सकता है।

क्रियावाद के द्वितीय अध्याय मे 'क्रिया' के अन्तर्गत पुद्गल उसके विविध रूपों परमाणु तथा स्कन्ध इन का लक्षण और इन के गुणो मे ह्रास, विकास सयोग वियोग गति स्थिति आदि परिवर्तन क्या? और कैसे होते हैं? एवं अजीव क्रिया का वर्णन करते हुए इन सब उपयुक्त बातो पर यथेष्ठ रोशनी डाली गई है। जीव क्रिया का उपक्रम करते हुए जीव और कर्म का स्वरूप भी दर्शाया गया है ? मानो क्रिया शब्द के द्वितीय अभिप्राय परिस्पन्दन का लेकर ससार रूपी रगमञ्च के दो प्रधान नायको के नाना अभिनयो का चित्रण करने का लेखक की कुशल लेखनी ने पूरा पूरा प्रयास किया है।

पुस्तक के ततीय अध्याय म क्रिया शब्द का उल्लेख ज्ञान निरपेक्ष चारित्र अर्थात शुष्क चारित्र को लेकर किया गया है। ज्ञान दर्शन शून्य चारित्र 'अजागलस्तन' की तरह निरर्थक भारभूत और ढोग मात्र है। ऐसा चारित्र मोक्ष का साधक नहीं होता। वह क्रिया जो मोक्ष का सोपान न बने जो मुक्ति के शिखर पर न ले जा कर जीव को ससार के अन्धकारमय भोरे म उतार दे वह क्रिया त्याज्य एव हेय है। उस से श्रेय की सिद्धि नही होती। यह बात पाठको के हृदय मे उतारने का इस पुस्तक के तीसरे सर्ग म सफल प्रयत्न किया गया है।

क्रियावाद के चतुर्थ अध्याय मे क्रिया शब्द के चतुर्थ अभिप्राय क्रिया सम्यक चारित्र को दृष्टि मे रखते हुए ज्ञान सहित चारित्र की उपयोगिता का प्रतिपादन किया गया है ? ज्ञान और दर्शन पूर्वक चारित्र का सम्यक परिपालन ही मनुष्य को मुक्ति के अमर तोरो की ओर ले जा सकता है। केवल बाह्य निर्जीव शुष्क चारित्र का आराधन जीव को अभ्युदय के शिखरो की तरफ कदापि नही ले जा सकता। इस प्रकार इस चतुर्थ

परिछेद मे सम्यक क्रिया चारित्र की उपादेयता बतलाते हुए उसके पालन करने पर बल दिया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत 'क्रियावाद' पुस्तक मे क्रिया शब्द की चतुर्मुखी व्याख्या करते हुए हमारे आदर योग्य लेखक श्री श्रमण' जी जन धम क प्रमुख २ तत्वों का भी छूने चल गये हैं। मानो क्रियावाद क द्वारा ये जनत्व की एक सुन्दर भांकी दिखाने मे काफी हद तक सफल हुए है।

श्री फूलच द जो महाराज श्रमण' जिस प्रकार तप, त्याग शान्ति और समता को मुह बोलती तस्वीर है ठीक उसी प्रकार आप श्री जी आगम महादधि में से अपनी महामति की अडिग तरणी को ले कर ले जाने वाले सफल माझी भी है। नयवाद और क्रियावाद ये दोना कृतियें आप श्री जी के गभीर शास्त्रीय अध्ययन की परिचायकाए हैं। आप ने आगम के अथाह सागर का मन्थन करके ये दो अमृत कलश निकाले हैं और ये दोना रचनायें वास्तव मे अपने प्रिय पाठकों के हिताथ अपने शिव सकल्पों के वितरण करने की मगल भावना का परिणाम मात्र हैं।

आशा है कि हमारे महामुनि श्रमण' जी इसी प्रकार अपने नूतन और परिष्कृत विचारों की चमत्कृत रश्मिए प्रदान करके पाठकों के जीवन पथ पर ज्ञान का आलोक बिखरते रहेंगे।

पुस्तक के सम्पादन और संशोधन म विभिन्न स्थलों पर अनेक त्रुटियां भी चक्षुपथ पर आने की सम्भावना भी हो सकती है किन्तु आशा है कि पाठक इन स्खलनाओं को अपूर्ण अल्पज्ञ और प्रमत्त जीवन की स्वाभाविक परिणतिए समझ कर

सहन करने का प्रयत्न करेंगे वैसे एक अशुद्धि पत्र भी इस के साथ जोड दिया गया है। पाठको की सुभीता के लिये। यदिआप इस पुस्तक से लाभान्वित होंगे तो उन का यह लाभ लेखक की लेखनी का गौरव समझा जायेगा।

भवदीय —
मुनि मनोहर कुमुद

धन्यवाद

आप सभी को विदित है कि किसी भी संस्था अथवा प्रकाशन का कार्य दान में निहित है। जब भी किसी कार्य के लिए समाज कटिबद्ध होता है तब उसी समय दानी महानुभावों की आवश्यकता का अनुभव होता है। दान करने में ही दानी की महत्ता है। जिस व्यक्ति के हृदय में समाज का हित होता है वह "दान दिये धन न घटे" की उक्ति को हृदयगम करता हुआ आगे बढ़ता है।

"क्रियावाद" पुस्तक के प्रकाशन मे सहयोग देने वाले ऐसे ही महानुभाव दानी सेठ है जिन का नाम सारा समाज जानता है वे है लाला अमर नाथ जी जैन। मैं समझता हू कि आप ने जहा भी किसी काम को अटका हुआ पाया है, उसे पूर्ण कर दिखाया है, आप ने इस पुस्तक के प्रकाशन में बहुत अधिक द्रव्य की भेंट की है, आप के इस शुभ कार्य लिये श्री जैन शिक्षा निकेतन लुधियाना, आप का धन्यवाद करता है।

१७-११-६१

मुलख राज जैन
लुधियाना।

विषयानुक्रमणिका

क्रिया
(आस्तिकता)

क्रिया किसे कहते हैं ? क्रिया का दूसरा नाम सम्यग्वाद है जिस को हम सत्यवाद और यथार्थवाद भी कह सकते हैं। जैसे कि कहा भी है

क्रिया सम्यग्वाद

अर्थात् जिस की श्रद्धा सम्यक्त्व की रश्मि हो जिस की मान्यता सत्यता से अलंकृत हो और जिस की तत्त्व प्ररूपणा यथार्थवाद के पावन जल से अभिषिक्त हो कर हृदय-सिंहासन पर आसीन हो उस को हम क्रियावादी कहने का अधिकार है और वह सचमुच ही सोलह आने क्रियावाद का उपासक है।

जब क्रिया को सम्यग्वाद कहा गया है तो यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि अक्रिया को मिथ्यावाद कहा जा सकता है। अक्रियावादी का ज्ञान भी अज्ञान ही होता है उस की श्रद्धा मिथ्यात्व पंक से पंकिल होती है, उस की मान्यता मलिन और उसकी प्ररूपणा विपाक्त होने से आत्मोन्नति की साधिका नहीं हो सकती। ऐसे होते हैं अक्रियावादी। मोक्ष के महामार्ग से पराङ्मुख हो कर चिर-समय तक संसार के अतिथि बन कर रहते हैं।

आस्तिक किसे कहते हैं और नास्तिक कौन होता है ?

इस विषय म भारतीय विचारका ने खूब विच'र किया है और नास्तिक आस्तिक की अनेका परिभाषाए बना कर हमारे सामने रख दी हैं। किसी न कहा कि जो ईश्वर का मानता है वह ही आस्तिक है और जो उस परमात्मा के अस्तित्व को नहो स्वोकार करता वह नास्तिक होता है।

किसो महानुभाव न आवेश म आ कर एक नतन ही कल्पना का अविष्कार किया कि जो वेदो की निदा करते हैं व ही वास्तव मे नास्तिक हैं और शेष सब आस्तिक। जसे कि

नास्तिको वेद-निदक

अथात वेदो का निदा करने वाले को नास्तिक कहते है। किन्तु यदि निष्पक्ष हो कर देखा जाये तो नास्तिक की यह परिभाषा समचीन नही कही जा सकती यह तो किसी के अपने द्वषाकुल मस्तिष्क की कलुषित कल्पना है जिस के पीछे काई ठोस आधार नही। याद रखिये ऐसी उत्तिए उन्मत्त प्रलाप की तरह विद्वानो की विचारणा का विषय नही बन सकती।

अष्टाध्यायी व्याकरण के रचयिता महर्षि पाणिनि न भी आस्तिक नास्तिक की समीक्षा करत हुए एक सूत्र रच ही डाला जस कि—

अस्ति नास्ति दिष्ट मति

सूत्र ४/४/६०

अस्ति परलाक इत्येव मतिर्यस्य स आस्तिक नास्ति इति मतियस्य स नास्तिक

अर्थात जो परलोक का मानता है वह आस्तिक और जो नही मानता वह हो नास्तिक है।

यह उक्त परिभाषा भले ही पूर्ण रूप से हमारा समाधान नहीं कर सकती किन्तु फिर भी यह कुछ न कुछ आस्तिक नास्तिक शब्द के भाव का अवश्य छूती है। क्योंकि जो परलोक को मानता है वह आत्मा को भी मानता है। वस्तुत आत्मवादी ही परलोक-वादी हो सकता है। आत्मा ही परलोक को जाती है न कि जड शरीर। फिर आत्मा परलोक म कोई अकेली तो नहीं जाती उस के सग अ य विजातीय तत्त्व होना है जिस को कम कहते हैं। कम शृङ्खलाओं से जकडा हुआ जीव ही परलोक-म प्रयाण करता है। इस से कम की भी सिद्धि हो जाती है। कम एक बीज है जिस के कटुक और मधुर फलो का रसास्वादन करने के लिये परलोक गामी जीव को विचित्र प्रकार की गतियो—अवस्थाओं मे से गुजरना पडता है। इस प्रकार नरक, स्वग तियग् और मनुष्य आदि कम भोग स्थानो का अस्तित्व सप्रमाण सिद्धि के सोपान पर आरोहण करता है। इस प्रकार परलोक शब्द मे आत्मा कम उसका शुभाशुभ फल और निखिल परिभ्रमण-स्थानो का समावश हो जाता है। पाणिनि की यह परिभाषा कुछ सीमा तक हमारे हृदय को सतुष्टि अवश्य करती है। कि तु फिर भी यह आस्तिक नास्तिक समीक्षा की सरणी अपूर्ण है क्योंकि यह उक्ति अल्पज्ञ का है सवज्ञ की नहीं।

जन धम क्रियावादी को ही आस्तिक मानता है और यही सम्यग्वाद है। जो वस्तु ससार म विद्यमान है अर्थात् जो है उस 'है' कहना और जो अविद्यमान है उस को 'नहीं है' कहना। यही वास्तव म आस्तिकता है जिस को दूसरे शब्दो म क्रिया वाद सम्यग्वाद कहा जाता है।

जो विश्व मे वतमान पदार्थों का अपलाप करता है

या अपने मिथ्यात्व के कारण अपने दुष्ट हेतुओं और प्रमाणों से वस्तु स्वरूप को अन्यथा मानता है वह नास्तिक है क्योंकि वह जो 'है' उसे नहीं है कहता है।

भगवान महावीर ने कर्मों पर विजय पाई उनके हृदय गगन पर केवल ज्ञान का भास्कर उदय हुआ। ससार को आप ने अपनी ज्ञान-रश्मियों से आलोकित कर दिया नास्तिक्य और आस्तिक्य की उलझी हुई समस्या सुलझ गई। प्रकाश के सम्मुख अधकार की समस्या का स्वयं ही निरसन हो जाता है परम कारुणिक भगवान महावीर ने जिस अस्तिवाद की मन्दाकिनी प्रवाहित की उस से लोगों के मनो का मिथ्यात्व धुल गया और उन्होंने एक बार फिर आस्तिकता के भव्य दर्शन किये।

जो नास्तिवाद को हृदयगम करना चाहते हैं उन को चाहिए कि वे सब से पहले अस्तिवाद की एक अनुपम झलक देख लें। पश्चात् उसके 'नास्तिवाद' का चित्र स्वय ही विचारों मे उतर जाएगा।

भगवान महावीर के भूतल पर अवतरित होने से पहले ही जनता में मिथ्यावाद घर कर चुका था और यही तो कारण था कि वे स मार्ग को छोड कर उन्मार्ग पर जा रहे थे। वे आस्तिकता का ढिंढोरा पीटते थे किन्तु थे वे पूरे नास्तिक अक्रियावादी। अमृतयागी महावीर ने सम्यग्वाद का सिंहनाद किया और लोगों के विचार-जगत में क्रियावाद की क्रांति मचा दी। भगवान के अस्तिवाद के पीयूष वर्षण के कतिपय अमृत बिन्दु नीचे भरते हुए दिखलाए जाते हैं।

अत्थि लोए
अस्ति लोक

लोक है

दीर्घ तपस्वी महावीर ने शखनाद किया कि लोक है लोक किसे कहते हैं ? कहा है कि

अवलोक्यते इति लोक

जो देखा जाए वह ही लोक है। जिस म छ द्रव्य हो। उसको ही लोक का नाम अपण किया जाता है जसे कि

धम्मो अहम्मो आगास
काला पोग्गल जतवो
एस लागुत्ति पण्णत्तो
जिणहि वरदसिहि ॥

जिसमे धम्मास्तिकाय (Medium of motion) जो जड और चेतन पदार्थों को चलने मे सहायता (Help) देता है। अधर्मास्तिकाय (Medium of Rest) (जो अजीव और जीव को विश्राति देन मे सहायक बनता है) आकाशास्तिकाय —Space (जा आत्मा और अनात्म वस्तुओ को आधार देता है) काल Time (यह पदार्थ की पर्यायो में नवीनता और फिर धीरे-धीरे जीर्णता क्षीणता और जजरता का सचार करता करता अन्त मे उस अवस्थान्तर के काल मे पहुचा देता है) पुद्गलास्तिकाय Matter यह वह जड द्रव्य है जिससे दृश्यमान जगत की रचना होता है।

जीवास्तिकाय Soul जो ज्ञान और दर्शन का स्वामी है इस प्रकार जिस मे इन छ द्रव्यो का अस्तित्व हो उस लोक कहते हैं। इस लोक के विस्तार का क्या कहना ? यदि आप इस की विशालता की कहानी* सुने तो आश्चर्य चकित रह जायें। लीजिए यह प्रसग है भगवती सूत्र के ग्यारवें शतक के

*जीव और अजीव का स्वरूप आगे अलग दिखलाया जायेगा

या अपने मिथ्यात्व के कारण अपने दुष्ट हेतुओं और प्रमाणों से वस्तु स्वरूप को अन्यथा मानता है वह नास्तिक है क्योंकि वह जो 'है उसे नहीं है' कहता है।

भगवान महावीर ने कर्मों पर विजय पाई उनके हृदय गगन पर केवल ज्ञान का भास्कर उदय हुआ। ससार को आप ने अपनी ज्ञान-रश्मियो से आलोकित कर दिया नास्तिक्य और आस्तिक्य की उलझी हुई समस्या सुलझ गई। प्रकाश के सन्मुख अन्धकार का समस्या का स्वय ही निरसन हो जाता है परम कारुणिक भगवान महावीर ने जिस अस्तिवाद की मन्दाकिनी प्रवाहित की उस से लोगों के मनो का मिथ्यात्व धुल गया और उन्होंने एक बार फिर आस्तिकता के भव्य दर्शन किये।

जो नास्तिवाद को हृदयगम करना चाहते हैं उन को चाहिए कि वे सब से पहले अस्तिवाद की एक अनुपम झलक देख लें। पश्चात उसके 'नास्तिवाद' का चित्र स्वय ही विचारों मे उतर जाएगा।

भगवान महावीर के भूतल पर अवतरित होने से पहले ही जनता मे मिथ्यावाद घर कर चुका था और यही तो कारण था कि वे सन्मार्ग को छोड़ कर उन्मार्ग पर जा रहे थे। वे आस्तिकता का ढिंढोरा पीटते थे किन्तु थे वे पूरे नास्तिक अक्रियावादी। श्रमणयोगी महावीर ने सम्यग्वाद का सिंहनाद किया और लोगों के विचार-जगत मे क्रियावाद की क्रान्ति मचा दी। भगवान के अस्तिवाद के पीयूष वर्षण के कतिपय अमृत बिन्द नीचे भरते हुए दिखलाए जाते हैं।

अत्थि लोए
अत्थि लोक

लोक है

दीर्घ तपस्वी महावीर ने दाखनाद किया कि लोक है लोक किसे कहते हैं ? कहा है कि

अवलोक्यते इति लोक

जो देखा जाए वह ही लोक है। जिस में छः द्रव्य हों। उसको ही लोक का नाम अपण किया जाता है जसे कि

धम्मो अहम्मो आगास
कालो पोग्गल जतवो
एम लोगुत्ति पण्णत्तो
जिणहि वरदसिहि ॥

जिसमे धम्मास्तिकाय (Medium of motion) जो जड और चेतन पदार्थों को चलने म सहायता (Help) देता है। अधर्मास्तिकाय (Medium of Rest) (जो अजीव और जीव को विश्राति देने म सहायक बनता है) आकाशास्तिकाय —Space (जो आत्मा और अनात्म वस्तुओ को आधार देता है) काल Time (यह पदार्थ की पर्यायो मे नवीनता और फिर धीरे-धीरे जीणता क्षीणता और जजरता का सचार करता करता अन्त म उस अवस्था तक के गाल मे पहु चा देता है) पुदगलास्तिकाय Matter यह वह जड द्रव्य है जिससे दृश्यमान जगत की रचना होती है।

जीवास्तिकाय Soul जो ज्ञान और दर्शन का स्वामी है इस प्रकार जिस मे इन छः द्रव्यो का अस्तित्व हो उसे लोक कहते हैं। इस लोक के विस्तार का क्या कहना ? यदि आप इस की विशालता की कहानी* सुने तो आश्चय चकित रह जायें। लीजिये यह प्रसग है भगवती सूत्र के ग्यारवें शतक के

*जीव और अजीव का स्वरूप आगे अलग दिखलाया जायेगा

दसव उद्द श मा गौतम न प्रश्न उपस्थित किया। भन्त ! लोन कितना बडा है? आयुष्मन ? भगवान बोले एक लाख योजन का मरु गिरि है। उसके शिखर पर चार देव सुखासीन हैं कल्पना करो गौतम! उस पवत के मूल की सम भूमिका पर चार दिशा कुमारिया अपने कोमल कान्त और कमनीय कर पल्लवो मे गेद लिये खडी ह। वे चा
अपना अपना गद फक देती है। ऊपर के
की गोल म आन से पहले ही अपने हा
इतन शीघ्र गामी हैं वे देवता ।
अन्त पान के विचार से चल
महादय के घर पुत्र रत्न का
कल्पना कीजिए एक सहस्र
और फिर वृद्ध हो कर
देव अभी तक लोक के
इस भाति एक ही
किन्तु देवता दौड
इतना विराट लोक है
आज के
समान है। जिस
ससीम और
और
ज्ञान से

यह लोक सारा गतिशील और चंचल लोक गति का, अधिष्ठान है। जो चौदह राजु का ऊंचा है। एक राजु असंख्यात योजन का होता है।

इस लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक चेतन और जड़ पदार्थ गमनागमन करते रहते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के गमनागमन में बाधा नहीं डालता। अपने सौभाग्य के कारण। एक घट के कुम्हार की तरह इस का रचयिता कोई नहीं। यह प्रवाह से अनादि है और अनन्त काल तक रहेगा। इसका सर्वथा विनाश नहीं हो सकता। केवल इस में जड़ और चेतन पदार्थों में रूपान्तर होता रहता है। इस की दशाएं बदलती रहती हैं। परिवर्तन होता है तो इस लोक में स्कन्ध से लेकर परमाणु तक साम्राज्य छाया हुआ है। इस अपेक्षा से इसे सादि कहा जा सकता है। किन्तु यह अवस्था परिवर्तन का क्रम भी स्वाभाविक ही है। इस में किसी शक्ति विशेष का हस्तक्षेप नहीं।

अत्थि लोए
अत्थि अलोए
अलोक है

लोक की तरह अलोक भी है। कहां है वह? लोक के चारों ओर अनन्तानन्त आकाश ही आकाश (Space) है उसी का नाम अलोक है। उस में अन्य किसी द्रव्य की सत्ता की खोज नहीं मिलती। कितना विशाल है वह अलोक? कहा है कि अनन्तानन्त लोक यदि अलोक में भर दिए जाएं तो भी अलोक का अन्त नहीं। भला आकाश का अन्त कब हो सकता है। स्मरण रहे कि लोक की भांति अलोक में पदार्थ और प्रकाश कुछ भी नहीं होता क्योंकि ये दोनों पुद्गल (Ma-

दसवें उद्देश का गौतम ने प्रश्न उपस्थित किया। भंते ! लोक कितना बड़ा है? आयुष्मन्? भगवान बोले एक लाख योजन का मेरु गिरि है। उसके शिखर पर चार देव सुखासीन हैं कल्पना करो गौतम! उस पर्वत के मूल की सम भूमिका पर चार दिशा कुमारियां अपने कोमल कान्त और कमनीय कर पल्लवों में गेंद लिये खड़ी हैं। वे चारों दिशाओं में अपनी अपनी गेंद फेंक देती है। ऊपर वे देवता उन्हें धरती की गोद में आने से पहले ही अपने हाथों में थाम लेते हैं। इतने शीघ्र गामी है वे देवता गौतम ! वे चारों लोक का अन्त पाने के विचार से चल पड़े उस समय इधर किसी महोदय के घर पुत्र रत्न का जन्म हुआ। उस की शुभायु कल्पना कीजिए एक सहस्र वर्ष की है। वह शिशु से युवा और फिर वृद्ध हो कर काल कवलित भी हो गया। किन्तु वे देव अभी तक लोक के अन्त तक नहीं पहुंचे। देवानुप्रिय ! इस भांति एक ही नहीं सात पीढ़िएं समाप्त हो जाएं किन्तु देवता दौड़ लगाते हुए भी लोक का छोर नहीं पा सकते। इतना विराट लोक है यह।

आज के वैज्ञानिकों का लोक इस के सामने एक कण के समान है। जिस पर वे फूले नहीं समाते। बुद्धि का ज्ञान सदा ससीम और परिमित होता है और आत्मा का ज्ञान असीम और अपरिमित। यह बात भगवान महावीर ने अनन्त केवल ज्ञान से बतलाई है।

यह लोक एक होता हुआ भी तीन तरह का है।

(१) अधो लोक
(२) मध्य लोक
(३) ऊर्ध्व लोक

यह लोक चारों गतियों और पंचम मोक्ष गति का, अधिष्ठान है। जो चौदह राजू का ऊंचा है। एक राजू असंख्यात योजन का होता है।

इस लोक के एक छोर से दूसरे छोर तक चेतन और जड पदार्थ गत्यागति करते रहते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के गमनागमन मे बाधा नहीं डालता। अपने सौक्ष्म्य के कारण। एक घड़े के कुम्हार का तरह इस का रचयिता कोई नहीं। यह प्रवाह से अनादि है और अनन्त काल तक रहेगा। इसका सर्वथा विनाश नही हो सकता। केवल इस के जड और चेतन पदार्थों मे रूपान्तर होता रहता है। इस की पर्याय बदलती रहती हैं। परिवर्तन शीलता का तो इस लोक के स्कन्ध से लेकर परमाणु तक साम्राज्य छाया हुआ है। इस अपेक्षा से इसे सादि कहा जा सकता है। किन्तु यह अवस्था परिवर्तन का क्रम भी स्वाभाविक ही है। इस मे किसी शक्ति विशेष का हस्तक्षेप नहीं।

अत्थि अलोए
अस्ति अलोक
अलोक है

लोक का तरह अलोक भी है। कहा है वह? लोक के छहो ओर अनन्तानन्त आकाश ही आकाश (Space) है उसी का नाम अलोक है। उस मे अन्य किसी द्रव्य की सत्ता की खोज नहीं मिलती। कितना विशाल है वह अलोक? कहा है कि अनन्तानन्त लोक यदि अलोक मे भर दिये जाए तो भी अलोक का अन्त नहीं। भला अनन्त का अन्त कैसे हो सकता है। स्मरण रहे कि लोक की भांति अलोक मे अन्धकार और प्रकाश कुछ भी नही होता क्योकि ये दोनो पुद्गल (Ma-

tter) के धर्म हैं अलोक में पुद्गल होता ही नहीं।

कुछ एक शून्यवादी बंधु जगत को सर्व-शून्य कहते हैं। उन महानुभावों का कथन है कि जिस तरह स्वप्न लोक में विभिन्न स्वप्न दिखाई देते हैं किन्तु जब आँख खुलती है तो वह माया न जाने कहाँ चली जाती है। उसका कहीं ठौर नहीं मिलता। सब कुछ विलुप्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार जब तक जीवन है और उस में तेज है, स्फूर्ति है और चेतना है। तभी तक दुनिया के चित्ताकर्षक और मन-मोहक दृश्यों की प्रतीति होती है एक आभास होता है किन्तु शरीरान्त होने पर जगत की माया स्वप्न संसार की भांति अन्तर्धान हो जाती है कुछ भी शेष नहीं रहता। सर्वत्र शून्यता का आधिपत्य छा जाता है।

भगवान महावीर ने लोक और अलोक की परूपणा करते हुए शून्य वादियों के शून्यवाद को सत्यता से शून्य कर दिया है।

अत्थि जीवा
सन्ति जीवा
जीव हैं

जीव का अस्तित्व भी है। नास्तिकों के सिद्धान्त पर भगवान का यह वचन हथौड़े का काम करता है। चार्वाक लोगों की भांति और लोग भी जीव के अस्तित्व पर विश्वास नहीं रखते। कई शरीर और चेतन को एक ही समझते हैं। नास्तिक कहते हैं—जैसे गुड़ और जौ आदि के मिलने से मदिरा और उस में नशा उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार पांच भूतों के संयोग से चैतन्य की उत्पत्ति हो जाती है। जैसे कि

पथिवी वायु अनल नभ नीरा
पाच भूत से बना शरीरा।

और उन का विचार है कि पाच भूतो के विनष्ट होने पर चैतन्य भी नाश के गर्त्त म पहुच जाता है।

भगवान ने जीव का स्वीकार करते हुए कहा—

नाण च दसण चेव
चरित्त च तवो तहा
वीरिय उवग्रोगो य
एयं जीवस्स लक्खणं

तपोधन महावीर की कितनी सुन्दर उक्ति है कि ज्ञान दर्शन चारित्र,तप,वीर्य और उपयोग आदि जीव के ही असाधारण गुण है। ये गुण जड भूतो के मिलाप से किसी प्रकार भी उत्पन्न नहीं हो सकते। अत जीव को जड भूतो का विकार नहीं माना जा सकता। याद रखिये। यदि जीव न हो तो नास्तिको को आत्मा का संदेह ही नहीं हो सकता। क्योकि जब सब कुछ जड ही जड है तो जड को आत्मा शब्द की स्मृति क्या? 'संदेह यह है कि जीव नही है' इत्याकारक ज्ञान भी जीव की एक पर्याय अवस्था है जो मिथ्यात्व, मोहनीय के प्रभाव से होती है। इस लिये जड वादियो की शका ही जीव की सिद्धि का प्रबल प्रमाण है। जीव सदा से है। पहले भी था, अब भी है और भविष्य मे इसका अस्तित्व सुरक्षित बना रहेगा यही सम्यग्वाद है।

अत्थि अजीवा
सन्ति अजीवा
अजीव हैं

इस लोक मे अजीव भी एक अस्ति पदार्थ है। इस की अपनी भिन्न सत्ता है। यह अपने परमाणु की अपेक्षा से

नित्य है और स्कध, देश प्रदेश की दृष्टि से अनि य। परिवतन तो परमाण मे भी चलता रहता है किन्तु वह मूलत नष्ट नही होता। अजीव का किसी न किसी रूप म तो अस्तित्व बना ही रहता है

पुरुषाद्व त वादी अपना एकमेवाद्वितीय ब्रह्म का सिद्धा त उपस्थित करत हैं। जिस का आशय है कि सवत्र एक ही ब्रह्म है और कुछ नही। अजीव का तो केवल अध्यास और आभास होता है। वह माया है और मिथ्या है। वह एक भ्रम है जो तत्त्व ज्ञान होने पर उड जाता है।

भगवान महावीर ने अजीव की स्वतन्त्रता की पृथक स्थापना की है। और उसे नव पदार्थो म दूसरा मूल तत्त्व माना है। इस मा यता मे 'पुरुषाद्व तवाद' का सिद्धान्त खटाई म पड जाता है।

अत्थि बन्धे
अस्ति बन्ध
ब ध है

अजीव के अस्तित्व के बाद अब ब ध की विद्यमानता बतलाई जा रही है।

कुछ लोग आत्मा को आकाश की तरह निर्बन्ध मानते हैं। उन के ख्याल मे आत्मा एका त अरुपी और अमूत हैं। जस सांख्य दशन पुरुष को सवथा मुक्त स्वीकार करता है और प्रतिबिम्बितपरुष को बद्ध कहता है इसी प्रकार वेदा ती भी एक काल्पनिक ब ध की मा यता रखना है। किन्त यह असत् सिद्धा त है क्योंकि वचारिक ब ध जो अज्ञान जनक है उस की निवृत्ति तो मुझ कोई ब ध नही मैं तो अबद्ध हू मुक्त हू इस प्रकार का ज्ञान जनक प्रतिपक्ष भावना मात्र से हो सकती

है फिर त्याग सयम साधना और तपश्चर्या आदि धमानुष्ठाना की कुछ भी अवश्यकता ही नही रहती और यह सब निरथक हो जाते है।

जनदशन जीव को रूपी और अरूपी दानो प्रकार का मानता है। जन धम दो नय मानता है।

1 व्यवहार नय

2 निश्चय नय

सापेक्ष दृष्टि का नाम नय है जब व्यवहार नय आगे हो कर अपना मत कहने लगता है तब निश्चय नय मौन हो कर पीछे हट जाता है। और जब निश्चय नय अपनी बात कहने लगता है तब व्यवहार नय गौण हो कर पीछे चला जाता है। देखिये एक उदाहरण

कल्पना कीजिये आप दूध मथ रहे हैं जब आप का दाया हाथ आगे बढ़ता है तब बाया पीछे की ओर और जब बाया आगे जाता है तो दाया पीछे हो जाता है। तब जा कर दूध मथा जाता है और उस से नवनीत निकलता है। यदि एक ही समय म दोनो हाथ आगे या पीछे हो जायें तो दूध मथा नही जा सकता ठीक इस तरह तत्त्व-विचारणा के लिये दोनो नयो का आश्रय लेना चाहिये।

व्यवहार नय से जीव बद्ध है और रूपी है इस दृष्टि से ससारस्थ जीव कम सहित होता है। कम पौदगलिक है। रूप पुदगल का गुण है इस लिये ससारी जीव व्यवहार नय से बद्ध और मूर्त है।

निश्चय नय से जीव अरूपी और अमूर्त है। मुक्त और शुद्ध है।

अत्थि मोक्खे

अस्ति मोक्ष

मोक्ष है

बन्ध की तरह मोक्ष भी है। मोक्ष शब्द में मुचल मोचने धातु का ही अर्थ झलकता है। छूटना ही इसका वास्तविक भाव है। बन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाना ही सच्ची मुक्ति है। वे बन्धन हैं—राग द्वेष के और ये अनादि हैं। संसार के समस्त दुःखों और सुखों के यह बीज हैं जिनका समूल नाश ही मोक्ष कहा जाता है।

कई लोग मोक्ष ही नहीं मानते यदि मानते भी हैं तो अस्थायी, अनित्य और अशाश्वत। क्योंकि वे कहते हैं कि जीव मोक्ष से लौट कर फिर संसार में आ जाता है। मीमांसकों का मत है कि आत्मा के अनादि बन्धन नहीं खुल सकते। हाँ सादि बन्धन तो छूट सकते हैं। सच पूछो तो मीमांसकों का यह कथन भी भ्रान्ति पूर्ण है क्योंकि बन्धन तो कोई भी अनादि नहीं होता। हाँ उस (कर्म) का प्रवाह अनादि अवश्य होता है और उस प्रवाह धारा का तपश्चर्या से शोषण क्रिया जा सकता है। पश्चात् उसके जीव मोक्ष के सन्निकट पहुँच जाता है।

अत्थि पुण्णे
अस्ति पुण्य
पुण्य है

पुण्य भी अपना अलग अस्तित्व रखता है। नास्तिक तो पुण्य और पाप की बात का आदर नहीं करते। वे तो पुण्य को एक मधुर कल्पना और पाप को कटु कल्पना कह कर दानों का निरादर कर देते हैं। यह 'अत्थि पुण्णे' का सुवचन ऐसे नास्तिकों के अभिप्राय पर चोट है और उन के अज्ञान को एक चुनौती है। कई महानुभाव विचित्र ही विचारों के स्वामी होते हैं।

य कहते हैं कि पुण्य को मानने का कोई आवश्यकता नहीं । पाप के बढ़ने से दुःख, और पाप के घटने से सुख उत्पन्न होता है । अतः पाप का ही स्वीकार करना चाहिये । किन्तु यह युक्ति विचार हीनता से भरी है । जब दुःख का नाश सांसारिक सुख का कारण बन जावेगा तो मोक्ष का सुख कब मिलेगा ? जैन धर्म पुण्य को वदव-वैभव का साधन मानता है और जीव को पवित्र बनाने वाले इस पुण्य को शान की वढो कह कर मोक्ष मार्ग में इसे बाधक मानता हुआ इसे अन्त में त्याज्य बतलाता है ।

अत्थि पाव

अस्ति पापं

पाप है

पुण्य की तरह पाप भी है । पाप वह वस्तु है जो जीव को मलिन करता और इसे भारी बना कर संसार पारावार में डूबने के लिए छोड देता है । पुण्य यदि स्वर्ण श्रृंखला है तो यह लोह शृंखला कही जा सकती है । दोनों ही बन्धन हैं । कतिपय सज्जन पाप की अलग सत्ता स्वीकार नहीं करते । उन के ख्याल में पुण्य के ह्रास से दुःख और उसकी अभिवृद्धि से सौख्य प्राप्ति होती है । परन्तु यह तर्क भी बड़ी भोली सी है क्योंकि यदि पुण्य के ह्रास से दुःखोत्पत्ति मानी जायगी तो पुण्य के आत्यंतिक क्षय से आत्यंतिक ही दुःख होगा और यह दुःख आत्मा का ही निजस्वरूप बन कर नित्य और अक्षय हो जायेगा अतः पाप को ही दुःख का बीज मानना चाहिये । पुण्य अमृत है तो पाप हलाहल विष है पुण्य उज्जीवक है और पाप मारक है । दोनों भिन्न २ गुण और प्रकृति के अधिपति हैं ।

अत्थि आसवे

अस्त्याश्रव

आश्रव है

आश्रव भी है। यही कम बध का मूल आधार है आश्रव क्या है ? प्रमाद पूर्ण योगा (मन, वचन और काया) जसे कि

कायवाडमन कम याग

तत्वार्थ सूत्र

से आकर्षित हो कर कम-पुदगलो का जाव से निकट आ जाना ही आश्रव है। (जसे Water House) से पानी नलो के द्वारा घरघर मे पहुचता है ऐसे ही उक्त तीन योगों से कम आत्मा मे प्रवेश करते हैं यही जन शास्त्रो की भाषा मे आश्रव' (Influx) कहा जाता है। इस के दो भद हैं।

1 द्रव्याश्रव
2 भावाश्रव

राग-द्वेष आदि भावो के प्रवाह को नाम भावाश्रव है

और

इस प्रकार के भावाश्रव से कम दलिकों का जीव के समीप आने का नाम द्रव्याश्रव है। इन दोनो म जय जनक भाव सम्बन्ध है। आश्रव के बाद ही कम बध होता है। इन दोनो म भी कारण काय सम्बध है।

अस्ति संवर
अस्ति संवर
संवर है

यह आश्रव का विरोधी तत्व है। आश्रव के नियन्त्रण से संवर देव प्रकट होते हैं। जसे वातायन या गवाक्ष के खुलने से वायु अथवा धूल आदि मकान म आने लग जाती है और बन्द हो जाने से पवन और मिट्टी आदि सब का निरोध हो जाता है। इसी तरह मिथ्यात्व अव्रत, प्रमाद कषाय और

योग आदि कारणों से कर्म (पुण्य और पाप) का आत्मा में आगमन होता है जिस का नाम आश्रव' है और उक्त कारणों का निराकरण हो जाने से आश्रव का भी निराकरण हो जाता है उसी का संवर कहते हैं। याद रहे कि जैन धर्म संवतात्मा (संवर लब्ध आत्मा) को ही मोक्ष (दुख का अत्यन्ताभाव) का अधिकार दिया गया है, असंवृतात्मा को नहीं।

अत्थि वेयणा
अस्ति वेदना
वेदना है

वेदना को भी माना गया है। दुःख सुखानुभूति को वेदना कहते हैं। वेदना कर्म (प्रकृति) का भी गुण नहीं। क्योंकि वह जड़ है उस में अनुभूति नहीं और न ही यह चेतना का निज गुण है क्योंकि वह सुख (आनन्द) (Bliss) रूप है। इसलिये जीव (आत्मा) और कर्म (प्रकृति) का संयोग ही इस का मूल कारण है। दुःख और सुख (भौतिक) जीव और कर्म दोनों में से किसी का भी स्वभाव नहीं दोनों का सम्मिलन ही इनके आविर्भाव का मुख्य केन्द्र है। इन दोनों का संयोग छूटते ही न दुःख रहता है न सुख। वहां रहता है केवल एक असीम अपरिमित और अक्षय आनन्द का लहराता हुआ सागर।

योग दर्शन ने भी दुःख और सुख की परिभाषा करते हुये कहा है कि—

(१) अनुकूल वेदनीय सुख
(२) प्रतिकूल वेदनीय दुख

अनुकूल वेदना का नाम सुख और प्रतिकूल वेदना का नाम दुख है।

शास्त्रकार दुख के तीन प्रकार बतलाते हुये कहते है
दुख त्रयाभिघाताज् जिनामा तदुपघातक हतौ ।
दृष्टे माऽपाथा चेत नत्रा तात्य ततोऽभावात ॥ २ ॥
साख्य तत्व कौमुदी कारिका । २ ।
इस श्लोक मे वर्णन किया है कि

(१) आध्यात्मिक
(२) आधिभौतिक
(३) आधिदविक

ये तीन तरह का दुख है। ये हो अनुकूल होन से सुख माने जाते हैं। इन सब का अनुभव जीव द्वारा ही होता है। कोई भी अनुभूति हो, आखिर वह आत्मा के ज्ञान की ही एक परिणति है। जड अनुभव स शून्य होता है हो, वह इन सब दुख सुखो का एक औपाधिक कारण अवश्य है।

अत्थि निज्जरा
अस्ति निजरा
निजरा है

निजरा भी है। कर्मों के अमिक क्षय को निजरा कहते हैं। निर्जरा निजरा मोक्ष की जननी है और मोक्ष जीव की निजी सपत्ति है। सवर और निर्जरा ही मोक्ष की पगडण्डी मानो जाती हैं। इस पर चल कर विश्व के अगणित आत्माओं ने अपने अभीष्ट को पाया है। सकट से नवीन कर्मों का आदान रोका जाता है। और निजरा से पूर्व-कृत कर्मों का तहस नहस किया जाता है जिस स आत्मा (जीव) कर्म व्यूह स निकल जाता है। आनन्द विभोर हो कर कृतकृत्य हो जाता है। इस विषय को औरस्पष्ट करन केलिये एक उदाहरण उपस्थित किया जाता है।

एक धनी व्यक्ति था । जीवन भर कृपणता उस के जीवन के अग-सग रही । उसने अपना बहुत सा धन दबा रखा था । पर कहा ? एक विचित्र स्थान पर, सुनिये उस ने अपने बाग म एक तालाब बनवाया । उसके ऐन मध्य मे एक गढ ह मे अपनी प्यारी पू जी रख उसे ई टा से बद करवा कर उस पर पक्का पलस्तर करवा दिया गया । फिर उस तालाब मे पानी छोड दिया गया । जल राशि से लहराते हुये उस जलाशय को देख कर किसी को भी उस मे दबे हुए खजाने की आशका नही हो सकती थी । इस प्रकार उसका धन जीवन से भी प्यारा धन जल की गोद म सुरक्षित पडा ।

मरने के एक दिन पहले उसने अपने इकलौते पुत्र को बुलाया और कहा –मैं तुम्हे एक बात बतलाए देता हू । अपना वह बगीचा है न जी हा लडका बोला उसके तालाब के पानी मे भूमि के एन मध्य मे एक धन की निधि है । इसे निकाल लेना । वृद्ध ने मरते मरते कहा ।

वह बिचारा वृद्धा चल बसा । उस के विलासप्रिय लडके ने विलास म फस कर पास का सब कुछ खो दिया अब उस तालाब से धन निकालने की सोचने लगा आखिर इतने गहरे जल म से धन कैसे निकाला जाये उसने सोचा। अपना दिमाग सुलझाया और तुरन्त उसने उपाय ढूण्ढ निकाला ।

उस ने उन सब स्रोतो (नालियो छिद्रो) को बद कर दिया जिन से पानी तालाब म आता था । उस ने नगर मे आदेश जारी

शास्त्रकार दुख के तीन प्रकार बतलाते हुये कहते है
दुख त्रयाभिघाताज जिज्ञासा तदुपघातके हेतो।
दृष्टे साऽपार्था चेत नैकान्तात्य ततोऽभावात ॥ २ ॥
सांख्य तत्त्व कौमुदी कारिका। २।

इस श्लोक मे वर्णन किया है कि

(१) आध्यात्मिक
(२) आधिभौतिक
(३) आधिदैविक

ये तीन तरह का दुख है। ये हो अनुकूल होने से सुख माने जाते हैं। इन सब का अनुभव जीव द्वारा ही होता है। कोई भी अनुभूति हो, आखिर वह आत्मा के ज्ञान की ही एक परिणति है। जड अनुभव से शून्य होता है हा, वह इन सब दुख सुखो का एक औपाधिक कारण अवश्य है।

अत्थि निज्जरा
अस्ति निर्जरा
निर्जरा है

निर्जरा भी है। कर्मों के क्रमिक क्षय को निर्जरा कहते हैं। निर्जरा मोक्ष की जननी है और मोक्ष जीव की निजी सपत्ति है। सवर और निर्जरा ही मोक्ष का पगडण्डी मानी जाती है। इस पर चल कर विश्व के अगणित आत्माओ ने अपने अभीष्ट को पाया है। सवर से नवीन कर्मों का आदान रोका जाता है। और निर्जरा से पूर्व कृत कर्मों का तहस नहस किया जाता है जिस से आत्मा (जीव) कर्म व्युह से निकल जाता है। आनन्द विभोर हो कर कृतकृत्य हो जाता है। इस विषय को और स्पष्ट करने के लिये एक उदाहरण उपस्थित किया जाता है।

एक धनी व्यक्ति था। जीवन भर धपणता उस के जीवन में अग-मग रही। उसने अपना बहुत सा धन दबा रखा था। पर कहां ? एक विचित्र स्थान पर, सुनिये उस न अपने बाग म एक तालाब बनवाया। उसके ऐन मध्य में एक गड्ढ़े मे अपनी प्यारी पूजी रख उस ईटों से बन्द करवा कर उस पर पक्का पलस्तर करवा दिया गया। फिर उस तालाब म पानी छोड दिया गया। जल राशि म लहरात हुये उस जलाशय को देख कर किसी को भी उस म दबे हुए खजाने की प्राप्ता नहा हो सकती थी। इस प्रकार उसका धन जीवन से भी प्यारा धन जल की गोद म सुरक्षित पडा।

मरने के एक दिन पहले उसने अपने इकलौते पुत्र को बुलाया और कहा —मैं तुम्हें एक बात बतलाये देता हूं। अपना यह बगीचा है न जी हां लडका बोला उस के तालाब के पानी मे भूमि के ऐन मध्य मे एक धन की निधि है! इस निकाल लेना। बूढे ने मरते मरते कहा।

वह विचारा बूढ़ा चल [बसा। उस के विलासप्रिय लडके न विलास मे फस कर पास का सब कुछ खो दिया अब उस तालाब से धन निकालने की सोचने लगा आखिर इतने गहरे जल म से धन कैसे निकाला जाये उसने सोचा। अपना दिमाग खुजलाया और तुरन्त उसने उपाय ढूण्ढ निकाला।

उस ने उन सब स्थानों (नालियों, छिद्रों) को बन्द कर दिया जिन से पानी तालाब मे आता था! उस ने नगर में आदेश जारी

कर दिया कि जो भी जल लेना चाहे। इस तडाग म स निकाल सकता है। लोगों ने अपने अपने कमण्डल सम्भाले और उस जल पूर्ण जलाशय से पानी निकालना आरम्भ कर दिया। कुछ शेष बचा जल श्रमकरों से निकलवाया गया। कुछ भगवान भास्कर की प्रखर रश्मियों ने रहा सहा जल भाग शोष डाला। उस की समस्त जल राशि तालाब का रिक्त छोड कर चली गई। मध्य भूमि को साफ कर धन माल निकाला गया। उसकी सारी दरिद्रता जाती रही। एक बार वह फिर धनवान बन गया।

ठीक इसी प्रकार आश्रव (कर्म आना) का संवर से बन्द किया जाता है। नूतन कर्मों का जल आत्मा म नही आता। अनन्तर पूर्व कर्मों का कुछ भाग तप और कुछ तपश्चर्या स शोषण किया जाता है। जिसे निर्जरा करना कहा जाता है। उस म से आनन्द की अक्षय निधि मिलती है। जीव की सासारिकता (दरिद्रता) जाती रहती है और वह अपने स्वरूप धन का पारर मालामाल हो जाता है। यही निर्जरा का स्वरूप और फल है।

ऊपर जीव, अजीव, पुण्य पाप, आश्रव संवर बन्ध निर्जरा मोक्ष, लोक, अलोक और धर्माधर्म आदि तत्वों के अस्तित्व को युक्तियुक्त प्रमाणित किया गया है। ये अखिल पदार्थ ससार में विद्यमान हैं और जो इन्हें स्वीकार करता है हृदय से वह ही आस्तिक-सम्यगवादी-क्रियावादी कहा जाता है।

अब प्रश्न उठ सकता है कि यह सारा ज्ञान और उसकी

चमत्कृत रश्मिया अ खिर कहा से निकला ? वह कौन दिवाकर था ! यह समूचा नान—भण्डार कित के लिये खोला गया किस किस न इनका समादर किया और किस किस न निरादर ! जिस न जावन मे उतारा और किसने इन तत्वा का केवल वाणी का ही आभूषण बना कर ही रख लिया ! जगत के इन सब महा पुरुषा का भ। अस्तित्व और उसकी झानी सा झलक दिखलाइ जाता है क्योकि क्रियावाद म इन के अस्तित्व का भी उतना हो ऊ चा स्थान है जितना कि वर्णित तत्वा का जिस प्रकार तत्वा की सत्ता है उसी प्रकार।

अरिहता वि सति

अह तो अपि सन्ति

अरिहन्त भी हैं

राग-द्वेष आदि गत्रुओ के विजेता का अरिहत कहते हैं और वे त्रिलोक पूज्य है ! आप अन्न्त नान क धनी होते है ! अनन्त दशन आपक जावन—प्राङ्गण म कीडा करता रहता है नित्य हा। क्षायिक सम्यक्त्व अरिह त के जीवन की अक्षय-निधि होती है। अपरिमित शक्ति आप के जीवन म अ ग सग रहती है ! इस गुण - राशि का आविर्भाव घातिक कर्मो के क्षय से ही होता है !

अरिहत ज्ञानवरणीय कम (Obstructive of Right Knowledge) दशनावरणीय कम (Obstructive of right faith) मोहनीय कम (Delusive) और अन्तराय कम Preventive of the Blissfulpath) इन कर्मा से मुक्त

होते है। इस वमचतुष्टय'के विनाश से अनन्त चतुष्ठय का जन्म होता है। ये संसार के उच्च काटि के एक आध्यात्मिक महा-पुरुष होते हैं जो ज्ञानामृत के मधुविन्दुओं से सतप्त मना को शान्ति का वितरण करते है। स्मरण रहे सभी तीर्थंकर अरि—हन्त होते हैं किंतु सभी अरिहन्त तीर्थंकर नही हाते क्यो ? इस लिए कि अरिहन्तत्व क्षायिक भाव है और तीर्थकरत्व हैं औदायिक भाव। नाम कर्म की एक प्रकृति जिसको तीर्थंकर नाम कर्म कहते हैं आत्मा का निजत्व वास्तव मे अरिहन्त तत्व मे निहित है अत यह सदा काल भावी है। यह नाभाग्य है जो धम का।

चक्कवट्टी वि अरिय
चक्रवर्ती अपि अरित
चक्रवर्ती भी है

कौन होता है चक्रवर्ती ? छ खण्ड का अधिपति। इस अवसर्पिणी काल मे 'भरत' महाराज से लेकर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती तक बारह भाग पुरुष इस सपूर्ण छ खण्डो पर अपना एक छत्र राज्य भोग चुके हैं। इन के ऐश्वय का क्या कहना। ३२००० देश और इतने हो राजा लोग आपकी दासता को अङ्गाकार करते हुये नत मस्तक रहते है। अपार सेना शक्ति। विशाल भवन। चौसठ हजार(६४०००)रमणिया जो रूप की राशि होती है। दास, दासी और पशु आदि का वभव आप के पूर्व-पुण्यो की ओर सकेत करता है। और तो क्या सुरलोक के देवता भी आप की रक्षा के लिये तत्पर रहते हैं। ये है पुण्यो के ठाठ। जो चक्रवर्त्ती शान्ति कुथु और अरनाथ की भांति भाग लिप्सा मे निकल जाते है व मोक्ष श्री का वरण करते है और

भोग पङ्क से पङ्किन हो कर जाने वाले नरक लोक के अतिथि बन कर जाते हैं। इस चक्रवर्ती के अस्तित्व को भी माना गया है। याद रहे ये शासक चौदह रत्न और नवनिधि के स्वामी होते हैं ससार म इन के समान दूसरा वभवशाली कौन हो सकता है ? कोई नहीं।

बलदेवा वासुदेवा त्थि मति
बलदेवा वासुदेवा अपि स्त
बलदेव वासुदेव भी है।

इन दोनों को मानना भी सम्यग्वाद है। वासुदेव तीन खण्ड के अधिकारी होते हैं। अपने पूर्व जन्म म तप और सयम की प्रतिमा होते हैं किन्तु निदान करके वासुदेव पद को प्राप्त करते हैं। वासुदेव भी अनुपम ऋद्धि सिद्धि और समृद्ध के धनी होते हैं। बलदेव और वासुदेव म भ्रातृत्व रहता है। दोनों सगे भाई होते हैं। वासुदेव के शरीर का वर्ण सुन्दर आकर्षक और मनोहर नीलम की तरह नीला होता है और पीला वस्त्र इन के तन पर शोभास्पद होता है। बलदेव का शरीर स्वर्ण सरीखा होता है और वस्त्र नीले रंग का उनकी शरीर-सपदा को और चार चांद लगाता है। दोनों का अतीव अनुराग दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं होने देता। क्षणिक वियोग विरह भी दोनों के मन म मार्मिक वेदना उत्पन्न कर देता है। दोनों के पितृदेव तो एक होते हैं किन्तु आप की माता एक नहीं होती। जसे कि नर पुङ्गव कृष्ण देवकी के अङ्गज थे और बलदेव रोहिणी के आत्मज परन्तु वसुदेव दोनों के प्यारे पिता थे इन दोनों की विद्यमानता और सत्ता को मान देना भी आस्ति-

सत्ता का एक प्रधान चिन्ह है।

आगे इसने नरक और स्वर्ग की सत्ता पर कुछ प्रकाश की किरणें डाली जायगी। कारण कि नास्तिक इन दोनों के अस्तित्व पर विश्वास नहीं रखते। उनका कहना है कि नरक और स्वर्ग एक कोरी कल्पना है। ये कुछ भी नहीं और कहीं नहीं। दुनिया को निला म भय भग्न के लिये ही और प्रलोभन देने के वास्ते हा नरक और स्वर्ग शब्द घट गये है। नरक और स्वर्ग केवल एक सपना है और अवास्तविक है। वास्तव म नरक और स्वर्ग सब यहीं हैं। जो लोग दुखी है वे सब मानो नरक म है और जो सुख निद्रा म मग्न है वे हो स्वर्ग म है। नास्तिको का यह मत जैन धर्म को स्वीकार नहीं। वह इन दोनों का अलग और स्वतंत्र अस्तित्व मानता है।

णरगा वि सति

नरका अपि सति

नरक भी है।

यह वचन नास्तिको के लिये एक चुनौती है। सच पूछो नरक को न मानने वाले ही नरक मे जाते हैं क्योंकि प्राय पुण्य और पाप पर विश्वास न रखने वाले पाप म अत्यन्त रम रहते हैं और अपनी आत्मा का अधःपतन कर लेते है? ऐसे पापिष्टो का आश्रम फिर नरक म ही बनता है। नरक कहा है? क्या उसका कोई अलग स्थान है? जी हा नरक अधो लोक म है? यहा एक वचन की बजाय बहुवचन का प्रयोग किया गया है। तात्पर्य कि नरक एक ही नहीं ? नरक

हैं मान। एक दूसरे के ऊपर अपने अपने घनाकाश तनुवायु, घन वायु और घनो वि पर आधारित हैं ? सात राजु लोक म उन का विस्तार है। तियञ्च पञ्चेंद्रिय और मनुष्य प चेन्द्रिय ही पापादय स नरक म ज म धारण कर सकते हैं।

उन का ज म भी उत्पात्त होता है। ज म तीन प्रकार का है। जस कि --

सम्मूच्छन गर्भोपपादाज्जन्म

तत्वार्थ सूत्र अध्याय दूसरा

(१) गर्भ

(२) सम्मूच्छन

(३) उपपाद

और देखिये।

देव नारकाणामुपपाद

सू० ३४

देव और नारको का उपपाद ज म होता है।

ज म लेने के लिये एक स्थान बना लेता है ॥

जिस को कुम्भीपाक' कहते हैं ? चार पाप घोर हैं और उनमे अत्यन्त आसक्त रहने वाला प्राय नरक का महमान बन सकता है।

(१) महार भ (२) महापरिग्रह
(३) कुणिमाहार (४) पञ्चेद्रिय वध

जो जीव एक बार किसी भी नरक में चला जाता पाप कर्मों से खिचा हुआ वह जघन्य (कम से कम) minimum दस हजार वर्ष तक वहां का घोर भीषण और दारुण यातनाएं भोगता रहता है।

देव लोग्रा वि सति
दव लोका ग्रपि सति
देव लोक भी है।

नास्तिक स्वर्ग (Heaven) की बात को भी हसी में उडा देते है। वे इसे 'सुदर कल्पना या रंगीली कल्पना' कह कर छोड देते है। जैन धर्म स्वर्ग की बात को पूरी तरह सोलह आने सत्य मानता है? देवों का निवास तीनों भुवनों में है। क्योंकि ये चार जाति के माने गये है। जैसे कि –

(१) भवनपति (२) वाण व्यन्तर
(३) ज्योतिषि (४) वैमानिक

अधो लोक में भवन पति मध्य लोक में है वाण व्यन्तर और ज्योतिषि, ऊर्ध्व लोक में वैमानिक देवों का साम्राज्य है। विशेष पुण्यों के उदय से जीव स्वर्ग लोक को जाता है। इस की पुष्टि में एक उपनिषद का उद्धरण दिया जाता है। जैसे कि पुण्येन पुण्यलोकं नयति पापेन पापम् उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्। (प्रश्नोपनिषद ३ ७)
अर्थात जीव पुण्य से पुण्यलोक और पाप से पापलोक को और दोनों के बल से मनुष्य लोक को जाता है। जैन धर्म के

अनुसार चार ही कर्म जीव को देवत्व प्रदान करते हैं जैसे कि

(१) सराग संयम (साधु धर्म) (२) (२) श्रावक धर्म
(३) अकाम निर्जरा (४) अज्ञान तप

देवता का एश्वर्य भी अनुपम होता है। कम से कम यहां दस हजार वर्ष तक अपने पुण्यों के मीठे फल खाता ही है। यह पुण्यसार (देवसार) के अस्तित्व का नाममात्र परिचय है।

> निरिक्ख जोणिया कि सति
> तिर्यग योनिजा अपि सन्ति
> तिर्यञ्च योनि के जीव भी हैं

तिर्यञ्च प्राणी एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक ही होते हैं। जैसे कि

एकेन्द्रिय One Sensed Animates

(१) पृथिवी (२) पानी (३) अग्नि (४) वायु (५) वनस्पति

(1) Earth (2) Water (3) Fire (4) Air (5) Vegetable

द्वीन्द्रिय	Two Sensed	जैसे कि नाग
त्रीन्द्रिय	Three Sensed	जैसे कि चिऊंटी
चतुरिन्द्रिय	Four Sensed	जैसे कि मक्खिका
पंचेन्द्रिय	Five Sensed	जैसे कि गाय

स्मरण रहे कि एकेन्द्रिय पांच तरह के प्राणी पाये जाते

है। जैसे कि

जलचर	(मछली)
स्थलचर	(घोड़ा) (सिंह)
नभचर	(तोता मैना)
उरपुर	(साप)
भुजपुर	(गिलहरी)

इस प्रकार इन जीवों की पृथक २ सत्ता है और अपने कर्मों से रच हुए दुख सुख भोग रहे है ? इन सब को अपना जीवन प्रिय है ? इन को मारना पाप है कई लोग इनमे आत्मा नही मानते। कहते हैं कि इन सब जीवो मे तो केवल प्राण है और वे जड है। इन को मारने मे कोई दोष नहीं ? अजी ? जरा सोचो कि प्राण आत्मा के बिना कैसे ठहर सकते है। इन मे भी हमारी तुम्हारी तरह आत्मा है। इस योनि के आरम्भ मे अनादिता और अन्त मे अनन्तता निहित है। कई सुधी मानते हैं कि पहले धरती अत्यन्त उष्ण थी यहा कोई जीव जन्तु न था। धीरे धीरे वह ठण्डी होती चली गई और जीव उत्पन्न होने लगे ! देखिये ! कैसा अटपटावाद है यह। भला असत् की उत्पत्ति और सत का विनाश कैसे हो सकता है। जैसे कि

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः

(गीता)

अत इन सब जीवों का अस्तित्व सदा कालभावी है और इस सिद्धान्त को मान लेना भी आस्तिकता का चिन्ह है।

मायापियाविसति
पितगी स्त
माता पिता भी है

प्रश्न हो सकता है कि माता पिता का मानने की और इन का अस्तित्व सिद्ध करने की क्या आवश्यकता है भला? वस्तुत यह उक्ति भी एक भ्रान्ति का उद्धरण करने के लिये है है। कइयों का ख्याल है कि बिना माता और पिता के भी जीवों का जन्म हो जाता है जैसे ईसाई लोग ईसा का जन्म एक कन्या के कुख से मानते हैं और उसे एक पवित्र आत्मा कह कर पूजते नहीं समाते।

ईसा के पिता को नहीं माना जाता। कुछ पुराण सनातनी सीता का जन्म एक घट मे मानते हैं और कुछ लव कुश की उत्पत्ति भी बिना मा बाप के ही मानते हैं जो नितान्त असत्य और मिथ्यात्वपूर्ण है। माता पिता की सत्ता मानने मे सत्य का अनादिता का बल मिलता है और एकत्व वाद का निरसन हो जाता है।

रिसआ विसति
नृपया ऽपि सति
ऋषिजन भी हैं

ऋषि लोग भी लोक मे अपना प्रभाव रखते हैं इन के जीवन जन-साधारण के जीवनस्तर से ऊचा होता है और जगत पूज्य होते हैं एकाग्र चित्त से रहते हैं। निर्जन वनो मे

शान्त मन से और अनासक्त हृदय से विचरते हैं जन समूह में दुनिया को अपने ज्ञान और अनुभवों का दान देकर उपकार का पुण्य संचित करते हैं। अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर मोक्ष मार्ग पर चलते रहते हैं। द्वन्द्वों में से स्थिर मन से गुजर जाते हैं। मान, अपमान निन्दा प्रशंसा दुःख सुख, राग-शोक सरदी गरमी भला बुरा सबको अनात्म भाव समझ कर उपेक्षा करते हैं। सदा अपने चिन्मय स्वरूप में रमण करते हैं अनेक नास्तिक इन्हें विश्व-भूषण ऋषियों के अस्तित्व को झुठलाते हैं और कहते कि ऋषि तो कोई बन ही नही सकता कोई भी अपने विकारों पर विजय पा ही नहीं सकता। जो ऋषि बन जाते हैं वे सब ढोंगी और पाखण्डी होते हैं। इस प्रकार तीनों काल में ही ऋषि मान्यता का तिरस्कार किया जाता है। कई कहते हैं कि पहले तो ऋषि होते थे किन्तु आज तो कम से भी कम नहीं हैं। आज कलिकाल में जो ऋषि मिलते हैं वे सब वेषधारी और छद्मवेषी हैं वे साधु नहीं स्वादु हैं। इस प्रकार वर्तमान समय में ऋषियों का अपलाप किया जाता है जैन धर्म इस प्रकार की मान्यता से सहमत नहीं जैन धर्म तो कहता है कि ऋषि थे हैं और आगे भी होंगे। हां उनके जीवन साधना में देश काल के अनुसार तारतम्य भाव अवश्य होगा। सर्वथा अस्तित्व उनका नहीं मिट सकता।

> सिद्धा विसंति
>
> सिद्धा अपि संति
>
> सिद्ध भी हैं

जैनधर्म सिद्ध के अस्तित्व को भी स्वीकृति देता ?

सिद्ध का साधरण सा अर्थ है अपने आप म पूर्ण। जो निजात्म स्वरूप के उच्च शिखर पर आसीन है। जिसकी सब कामनाए निशेष होकर पूर्ण हो गई है। उस सिद्ध कहते है। हमारे सामने सिद्ध नाना रूपो मे आते है। जैसे कर्म सिद्ध शिल्प सिद्ध विद्या सिद्ध, मन्त्र सिद्ध योग सिद्ध अर्थ सिद्ध इत्यादि अनेक प्रकार के सिद्धो से दुनिया भरी पडी है। किन्तु यहा इन सिद्धो की चर्चा नहीं की जा रही। यहा तो कर्म क्षय सिद्ध ही अभीष्ट है। वे ही हमारी लेखनी का लक्ष्य है जिस ने कर्ममल को धो डाला है अपने धर्म और शुक्ल ध्यान के साबुन और चारित्र के निर्मल नीर से। जिस ने कर्म धन को जला कर भस्म बना दिया हो अपनी तप अनल म। जो नाना प्रकार क कर्मों से रहित हो गये हो जस

(१) क्रियमाण—वर्तमानकाल (आश्रव)
(२) सचित — पूर्वकृत
(३) प्रारब्ध—उदय प्राप्त

व निष्कर्म, मुक्त और अशरीरी जीव जैन धर्म म सिद्ध माने जाते हैं और उन्हे ही परमात्मा कहा जाता है।

जरा ध्यान दीजिए, कि आप को पता चलेगा कि यहा सिद्ध पद बहुवचनान्त है। आशय इस का यह है कि सिद्ध (परमात्मा) एक ही नही होता! वे होते हैं अनेक। नही नहीं अनन्त जिसका कोई अन्त नही जैन धर्म की यह मान्यता अटल एव ध्रुव है कि प्रत्येक जीव ईश्वरत्व का स्वामी है! अनन्त आनन्द का सागर उसमे लहराता है! वह अपने आप म

पूरा है अधूरा नही । अधूरा बनगया है अपनी भूल से मिथ्यात्व अज्ञान से । अज्ञान का नाश सम्यक्ज्ञान से किया जा सकता है सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र की पगडण्डिया पर चलता चलता एक दिन यह आत्मा भी आनंद धाम का पहुच जाता है और परमात्मा ही बन जाता है। इस म और उस म कोई अ तर नही रहता , जन इस यह भी मानता है कि जीवन म अरिहंत तत्त्व पाये बिना सिद्धत्व भी सिद्ध नही होता। वास्तव म जीवन मुक्ति ही विदेह मुक्ति है।

जन धर्म का यह दृढ विश्वास है कि अप्पा सो परमप्पा ।

(१) आत्मा ही परमात्मा बनता है
इन्सान बनता है भगवान
अल्पज्ञ बनता है सर्वज्ञ
सकर्मा बनता है निष्कर्मा
अल्पदर्शी बनता है सर्वदर्शी

उस मुक्त आत्मा के अजर अमर अलक्ष्य निर्विकार आदि प्रायः मनोहर और गुण निष्पन्न नाम शास्त्रों के पन्नो पर अंकित है ? जन धर्म उस सिद्ध का मनोहारी नाम श्रवण करता है।

जन धर्म ऐसे ईश्वर को मानता नहीं जो सदा से एक है ! परोक्ष है ? विश्व का नियन्ता है असज्जनों का निहन्ता भी वही है ! सन्तो का प्रतिपालक है। दुनिया का निर्माता और विधाता है। शासको का भी शासक है रक्षको का भी

रहार है दुनिया की वागडोर जिन के हाथ म है जो चाहे सो करता है किसी को नरक म धकेलता है किसी को स्वग म पठाता है कभी उस के मन म कौतुहल जागता है? अपना परम धाम का आनन्द सिहासन छोड कर नाग उतरता है और ससार की लीला रचाने के लिय वेधन धारण हो जाता है। जैन धम ऐन सहामा औडारत और गीता वाले ईश्वर को अपना आराध्य उपास्यदेव नही मानता जैन धम चेतनता का उपासक है पूजक एव प्रचारक है वह तो निरुपाधिक परब्रह्म परमात्मा मानता है। भक्ति और उपासना भी वह ईश्वर को मिलने के लिए नही करता अपितु ईश्वर को प्राप्त करने के लिय करता है। यदि एक पग आर आगे बढाया जाय तो कहा जा सकता है कि जिनत्व प्राप्ति क पश्चात ही साधक की साधना परि समाप्त होनी है। यह जैन धम का ईश्वर विषयक मान्यता है।

सिद्धा वि अत्थि

सिद्धिरपि अस्ति

सिद्धि भी है

निर्वाण के बाद आत्मा की जो अवस्था होती है उस सिद्धि स्थान या सिद्धालय कहते हैं इसके अनुरूप अनेक विशेषण शास्त्रों की पंक्तियों म सजाये गये हैं। जैसे शिव अचल अरुज अनन्त अक्षय और अव्याबाध आदि। पुनरावृत्ति से वह स्थान शून्य है। क्योंकि भव भ्रमण का कारण कम वहा नही दग्ध बीज से अंकुर नही फूटता। यह एक निर्विवाद सत्य है। इस पर एक गाथा देखिये।

जहा दड्ढाण बीयाण
न जायंति पुण अंकुरा।

पम्म वोयसु दडढस
न जायति भवाकरा

इस प्रकार मुक्त जीव ससार म फिर लौट कर नहा आता। यदि वह फिर ससार कारागार का वन्दी बन जाये। तो वह मुक्त हो क्या हुआ जन धम क्षणिक मोक्ष नही मानता। उसका शब्द म मुक्त जीव स. के लिये दुख-व्यूह से निकल जाता है।

अत्थि परिणिव्वाणे
अस्ति परिनिर्वाण
परिनिर्वाण है

अनादि काल का मोह ग्रस्त जीव जब मिथ्यात्व से निकल कर सम्यक्त्व के प्रकाश म आता है तो उसे विकास की पगडण्डी मिलती है बढता २ वह महाज्ञानी (केवल ज्ञानी) बन जाता है, यही उसका आत्म कल्याण है। शरीर परित्याग के पश्चात् उसका परिनिर्वाण होता है। वहा उसका अस्तित्व मिट नही जाता। अपितु वहा वह अनन्त अनन्त काल तक ज्ञान दर्शन म समाधि लेता है। सभी तो कहा है।

परिणिव्वुआ वि सति
परिनिवृत्ता अपि सति
परिनिवृत्त भी हैं

जो निर्वाण को प्राप्त कर चुका है वह शास्त्र की भाषा मे परिनिवृत्त कहा जाता है कई दार्शनिक आत्मा के विशिष्ट गुणो का अभाव हो जाना ही मोक्ष मानते हैं।
जैसे कि—

दीपो यथा निवृत्ति मभ्युपेतो नवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्
दिश न काचित् विदिश न काचित स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्
जीव स्तथा निर्वृत्ति मभ्युपेतो नवावनि गच्छति नान्तरिक्षम्
दिश न कांचित् विदिश न काचित स्नेह क्षयात् केवलमेति शान्तिम्

सारांश यह है कि जिस प्रकार प्रदीप स्नेह विरल हो कर बुझ जाता है। आत्मा भी इसी तरह गुण शून्य होकर शांत हो जाती है। यही उसका निर्वाण है। उसका कुछ भी शेष नहीं बचता।

बौद्ध दर्शन आत्मा को क्षणिक मानता है। उसके मत मे आत्मा एक बदलने वाला पदार्थ है। उस मे नित्यत्व है ही नही भला जब वह उस की नित्यता का स्वीकृति के पुष्प नहीं चढ़ाता तो वह मोक्ष या परिनिर्वाण के पश्चात उसके अस्तित्व की कैसे प्रामाणिकता दे सकता है। उस के सिद्धान्त मे परिनिवृत्तो का अस्तित्व नही है।

अतिरिक्त इसके बौद्ध मत आत्मा को कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही मानता। उस का विचार है कि आत्मा पाँच-स्कन्धो का एक समुदाय है। जैसे कि—

१—रूप
२—विज्ञान
३—वेदना
४—सज्ञा
५—संस्कार

ये वास्तव म भव भ्रमण क बीज है जब तक इन को नष्ट किया नहा जाता तब तक दु ख का नाश नहीं हो सकता। इन क अभाव का हा नाम मोक्ष है। तो क्या कि मोक्ष या निर्वाण म आत्मा का सदभाव नहीं होता।

नयायिक और वैशेषिक दर्शन मुक्त आत्मा को तो मानते हैं किन्तु साथ ही वे उसके विशेष गुणों की अनुपस्थिति भी मानते हैं और यह सिद्धात तर्क—सम्मत नहीं हो सकता क्योंकि गुणी अपने गुणों स कोई अलग तो होता ही नहीं। उन का तो अविनाभाव सम्बध है। एक क नष्ट होने स दूसरा नहीं रह सकता कि तु यहा गुणी (आत्मा) को माना जा रहा है गुणों का निषध किया जा रहा है यह धामाना को स्वीकार नहीं।

जैन धर्म मोक्ष अवस्था में आत्मा और उसके ज्ञान दर्शन आन द और वीर्य आदि गुणों कोपूर्ण रूपण मानता है। जिसका जन धर्म म परिनिव त्ता क अस्तित्व का स्वीकृति की परिधि म रखा गया है। जस कि

अरविणा जीवघणा नाण दसण सन्निया।

अउल सुह सम्पत्ता उवमा जस्स नत्थि ३॥

उ० सू० अ० ३६ वा गा० ६७ वी

अर्थात व सिद्ध (परमात्मा) घनरूप ज्ञान दर्शन स युक्त अतुल सख-राशि के आगार है। ससार म ऐसा निमय सुखमय और मगलमय सिद्ध देव के लिये कोई उपमान नहा है वे निरुपम ही है।

ससार के परले पार व पहुच गये हैं। लोक के अग्रभाग में वे शान्त भाव से अपने स्वरूप में स्थित हैं।

जसे कि

लोगग्गदेस त सव्वे
नाण दसण सनिया।
ससार पार निच्छिण्णा,
सिद्धि वरगइ गया ॥ ६८॥

अन जन धर्म मुक्त आत्मा के निज गुणो के पूर्णतया विकसित होने को ही सिद्धान्त कहता है। यही कारण है कि वह उच्च धन करता है। कि परिनिवृत्ता का अस्तित्व है। एसा मानना आस्तिकवाद या सम्यग्वाद है जिसको दूसरे शब्दो में क्रिया वाद भी कहा जाता है।

उपयुक्त सब तत्वो और पदार्थों का जानना मानना और विश्वास करना सच्चा क्रियावाद है।

आगे इस के हम कुछ और शास्त्र-वचनावलिया उपस्थित करेंगे जो हमारे प्रस्तुतवाद के लिये सान पर सुगन्ध का काम करेगी।

मूल प्रवचन

अत्थि पाणाइवाए मुसावा ए अदिण्णादाणे मेहुणे, परिग्गहे,

अत्थि कोहे माणे, माया लोभे जाव मिच्छादसणसल्ले।

अत्थि पाणाइवाएवेरमण मसावाएवेरमणे
अदिण्णादाण वेरमण मेहुण वेरमणे, परिग्गह वेरमणे
कोह विवेग जाव मिच्छा दसणसल्लविवेगे ।

ऊपर भगवान वीर के अमृत भरे उपदेश मे अठारह पापो की गिनती की गई है। उनका अस्तित्व सिद्ध किया गया है। जब दुनिया मे दुख है तो उसका कोई न कोई ज्ञात अथवा अज्ञात कारण अवश्य रहना चाहिये और वह पाप है। वास्तव मे तो 'अज्ञान' ही दुख का बीज है! किन्तु व्यवहार म पाप का ही दुख का हेतु माना जाता है। जस कोई व्यक्ति अ धकार मे पडे पत्थर से ठोकर खा कर गिर पडता है। यदि उस स पूछा जाए कि कसे गिरे साहिब! तो कहा जाता है कि मित्र क्या बताऊ पत्थर से ठोकर लगी और गिर पडा। हालाकि उस के गिरने म अधेर का ही हाथ है। और फिर पाप भी तो अज्ञान से होता है और दुख तो अशुभ कम का ही परिणाम है और वह कम पाप है। पीछे 'अत्थि पावे' कहकर उस पर कुछ प्रकाश डाला गया था किन्तु अब पाप कितने है? इस प्रश्न का समाधान कर दिया गया है कि वह अठारह हैं। अतिरिक्त इस के आगे यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि इन पापो म निवत्त होना भी अनादि कालीन है। जस कि एक कवि ने क्या सुदर कहा है

एक चलता है पाप-पथ पर
नित्य नूतन डग भर भर
एक चलता पुण्य पथ पर

लव मे अमिट विश्वास लेकर
एक दोनों से निराला
धम का जिस म उजाला
आवागमन से निकल कर
मिलती उमे आनन्द ! शाला !!

अत पाप पुण्य और धम का अस्तित्व समार मे युक्ति सिद्ध है ! भगवान महावीर की यह देशना अढाई हजार वर्ष पुरानी है। उववाइ (औपपातिक) सूत्र जिसका साक्षी है !

भगवान महावीर की दिव्य वाणी का प्रकाश और भी लीजिए

सव्व अत्थि भाव अत्थित्ति वयइ ?
सव्व नत्थि भाव नत्थि त्ति वयइ !!

समार मे जिन पदार्थो का अस्तित्व है उन के अस्तित्व को स्वीकार करना और जो नास्तित्व के द्यातक हैं उन को नहीं है की कोटि म रखना । यही क्रियावाद है ? जो इस से विपरीत धारणा रखता है वह अक्रियावादी है, नास्तिक है।

स्मरण रहे कि जितने अनन्तानन्त पदाथ अस्तित्व धम से युक्त है उतने ही अनन्तानन्त पदाथ नास्तित्व से भी युक्त हैं। जैसे कि जितने गुण जीव मे है वे सब जीव मे तो हैं किन्तु अजीव में उन का अभावत्व है। अतिरिक्त इसके अजीव मे जितने अनन्तानन्त गुणों का सद्भाव है इस प्रकार जो हर वस्तु-तत्व पर सापेक्ष दृष्टि से विचार करता है और विभिन्न नयों निक्षपो और प्रमाणो से सत्य तक पहुचता है और पदार्थ के यथाथ स्वरूप का प्रतिपादन करता है वह सम्यग्वादी है।

भगवान महावीर ने कर्म और उसके फल की सत्ता को मानते हुए कहा।

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला भवंति।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला भवंति॥

सुंदर कर्मों का फल भी सुंदर और असुंदर कर्मों का फल भी असुंदर होता है।

अनात्मवादी, कर्म और उस के फल को नहीं मान सकते। जब आत्मा ही नहीं तो कर्म कैसा और फल कैसा? तभी तो जैन धर्म ने आत्मवाद को प्रथम स्थान दिया है जैसे कि —

से आया वादी लोआ वादी
कम्मावादी किरियावादी (सू—५)
आ०सू०उ०१

जो आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला है वही आत्मवादी है जो आत्मवादी है वही लोकवादी है कर्मवादी है वही क्रियावादी है अर्थात् कर्मबंध के कारण भूत क्रिया को जानने वाला है अथवा वही आस्तिक है।

कई महानुभाव कर्म और उस के फल को कपोल-कल्पना मानते हैं। किन्तु ऐसे निपट नास्तिक भी अपने दुष्कर्मों से ग्रसे हुये हैं। जो व हैं कर्म धर्म कुछ समझ में नहीं आ रहा। यह उन के मिथ्यात्व के उदय का प्रभाव है जो वे अपने मोह और प्रमाद से महापुरुषों के सम्यक् ज्ञान से वञ्चित हैं। नास्तिकों का इससे बढ़कर और दुर्भाग्य क्या होगा।

और भी कहा है

फुसइ पुण्ण पावे पच्चायति जीवा।
सफने कल्लाण पावए॥

जीव पुण्य और पाप का स्पर्श करता हुआ उन के भले बुरे फल अवश्य प्राप्त करता है। अशुभ कर्म का फल शुभ नहीं हो सकता और शुभ कर्म का फल अशुभ नहीं हो सकता यह एक अटल सिद्धान्त है जिस में अणुभर का हेर फेर नहीं हो सकता है।

इसके आगे हम मिथ्याज्ञानी (नास्तिक) सम्यग्ज्ञानी (आस्तिक)के लक्षणों पर प्रकाश डालेंगे।

देखिये —

णत्थि ण णिच्चो ण कुणइ
कय ण वेयइ णत्थि णिव्वाण।
णत्थि य मोक्खोवाओ
छ मिच्छत्तस्स ठाणाइ॥

इस उपर की गाथा में यह भाव झलकता है कि मिथ्याज्ञानी नास्तिकता के विचारों से अलकृत होता है। जैसे कि वह कहता है

१—आत्मा नहीं है
२—वह नित्य नहीं है
३—आत्मा कर्त्ता नहीं है
४—कृत-कर्म भोक्ता भी नहीं है
५—आत्मा का मोक्ष नहीं है
६—मोक्ष का उपाय भी नहीं है

उपयु क्त छ लक्षण जिस किसी मे भी मिलते हो वह अक्रियावादी नास्तिक है। स्मरण रहे इन म से यदि एक भी लक्षण पाया जायगा तो वह भी नास्तिक के पाप से अछूता नही रह सकता जसे कि —

चार्वाक दशन अनात्मवाद
बौद्ध दशन क्षणिकवाद
सांख्य दशन कत त्ववाद
पूव मीमासा अनिर्वाण और अनुपाय
वेदात दशन (उत्तर मीमासा)
अभोक्तृत्ववाद का समथक है

इस प्रकार य सभी दशन सम्यग्ज्ञान के स्वामी हैं। यह कहो म कुछ सकोच होता है क्योकि सम्यग्वाद छ बातो पर आधारित है

अत्थि अविणासधम्मा करेइ,
वयइ अत्थि निव्वाण।
अत्थि य मोक्खो वाओ
छस्सम्मत्तस्स गणाइ ॥

१ आत्मा है
२ वह अविनाशी है
३ वह कम का कर्त्ता है
४ फल का भोक्ता है
५ मोक्ष है
६ उस का उपाय भी है

यह सम्यग्ज्ञान की कसौटी है। इस पर कस कर परखा जा सकता है कि किस में कितना आस्तिक्य है और कितना नास्तिक्य है।

इन वर्णित गुणों का धारक सच्चा क्रियावादी कहा जा सकता है। यही मनुष्य के आस्तिकता का माप दण्ड है।

इस लिये हम अधिक न लिखते हुए इतना ही पर्याप्त समझते हैं कि जो व्यक्ति ऊपर के विचारों से सहमत है वह जैन धर्म में आस्तिक कहा जाता है और उस का दूसरा नाम क्रियावादी है। भगवती सूत्र में निम्नलिखित सभी आत्माएं क्रियावादी कही गई हैं जैसे कि —

सम्यग्दृष्टि
अवेदी
अकषायी
अयोगी
मतिज्ञानी
श्रुतज्ञानी
अवधिज्ञानी
मन पर्यवज्ञानी
केवलज्ञानी
अलेश्या

सम्यगवाद

ये सभी क्रियावादी हैं। आस्तिक हैं यह भगवान महावीर के उपदेश की पावन धारा जिस के कुछ मधु-बिन्दु आपके आस्वादन के लिये उपस्थित किये गये हैं। यह है उस क्षमावीर महावीर की हजारों वर्षों की हितकारिणी देशना जिस में क्रियावाद का प्रथम-परिभाषा थिरक रही है।

आगे हम क्रियवाद के दूसरे अभिप्राय पर प्रकाश डालेंगे।

क्रिया बनाम परिस्पन्दन

हम अपने पिछले प्रकरण मे क्रिया के सम्यग्वाद अर्थ पर कुछ अपने विचार प्रस्तुत कर आये हैं अब इस प्रकरण मे हम क्रिया' के दूसरे अर्थ या 'भाव पर कुछ ऊहापोह करेंगे ?

क्रिया का अर्थ गति एजनता कम्पन, हरकत और परिवर्तन भी होता है। ये सब 'क्रिया के समानार्थक नाम है। क्रिया दो प्रकार की होती है।

१—द्रव्यगत

२—भावगत

द्रव्यगत —

द्रव्य मे या उस के प्रदेशो मे हिलन चलन रूप जो स्पन्दन या हरकत होती है उसे कहते है द्रव्यक्रिया।

भाव क्रिया —

द्रव्य के आश्रित गुणो मे जो परिवर्तन होता है उसे कहा जाता है भाव क्रिया।

द्रव्य और गुण को स्पष्ट करने के लिये यहां एक उद्धरण दिया जाता है।

क्रियावाद

गति	कम्पन	परिवर्तन

गुणपर्यायवन्द्रव्यम

तत्त्वार्थ सूत्र अ० ५ सू० ३८

गुणाणमासओ दव्वं एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु उभओ अस्सिया भवे॥

उत्तरा० सूत्र अध्य० २८ गा०६

द्रव्य गुण और पर्याय वाला होता है
द्रव्य गुण के आश्रित और गुण द्रव्य के आश्रित रहता है। पर्याय द्रव्य और गुण दोनो के आधार पर जीवित रहती है अर्थात उस की उत्पत्ति होती है इसी सिद्धांत के आधार पर क्रिया के दो भेद किए गये हैं। द्रव्य ६ है जैसे कि —

छव्विहे दव्वे पण्णत्ते तं जहा धम्मत्थिकाए
अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए
पोग्गलत्थिकाए अद्धासमये अ

अनुयोग द्वार द्रव्यगुण०सू०१२४

अर्थात धम्मास्तिकाय
अधर्म्मास्तिकाय
आकाशास्तिकाय
जीवास्तिकाय
काल

उपयु क्त द्रव्यो म स केवल दो द्रव्यो मे द्रव्य क्रिया पाई जाती है। वे हैं

१—पुदगलास्तिकाय
२—जीवास्तिकाय

ये ही दो द्रव्य गति करते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। इन मे और इनके प्रदशा मे स्पष्ट क्रिया दष्टिगोचर होता है। अत ये सक्रिय द्रव्य है। शेष चार द्रव्य इस क्रिया स न य होते है। वे गति नही करते, स्थाना नर पर नही आते जाते। उन क प्रदेशा मे परिस्पन्द भी नही होता। इस लिए व निष्क्रिय द्रव्य है किन्तु भाव क्रिया तो उन म भी पाई जाती है इस अपेक्षा स वे भा सक्रिय ठहरते ह ज धम यह मानता है कि ससार मे ऐसा कोई द्रव्य नही जिस मे भाव क्रिया भी न हो। भाव क्रिया को न मानने से द्रव्य का अस्तित्व ही मिट जाता है। भाव क्रिया तो मुक्त जीव म भी रहती है केवल द्रव्य क्रिया की अपेक्षा मे व निष्क्रिय हैं। परन्तु जीव और पुदगल उभयक्रियावान है जबकि शेष द्रव्य-चतुष्टय भाव क्रिया वान है।

अब हम 'सूचा कटाह याय स प्रसग वश पुदगलास्तिकाय का उपक्रम करने ह।

देखिये पुदगल के दो रूप हमारे सामने हैं जसे कि

१ परमाणु
२ महा स्कन्ध

परमाणु

यह पुद्गल (Matter) का सब से छोटा भाग होता है। इसका दूसरा भाग नहीं हो सकता। जिस का दूसरा भाग हो जाता है वास्तव में वह परमाणु हो नहीं पाता। अपितु परमाणु समुदाय' होता है।

आज का युग एक परमाणु युग है। इस की बहुत चर्चा है। आज के वैज्ञानिकों ने परमाणु जगत का सब अन्वेषण किया है। इस से पूर्व भारतीय चिन्तकों और विचारकों ने बहुत कुछ परमाणु पर अपनी बुद्धि दौड़ाई और विविध परिभाषाएं इस परमाणु को समझाने के लिए घड़ी गई। जैनाचार्यों ने भी इस पर सूक्ष्म समीक्षण और और परीक्षण करने के बाद इस के स्वरूप को अवगत कराने का एक सफल प्रयास किया है।

वैदिक परम्परा में दार्शनिकों ने परमाणु की परिभाषा इस ढंग से बतलाई है। जरा नीचे दृष्टि डालिए —

जाला तर गते भानो सूक्ष्म यद दृश्यते रज।

तस्यषष्ठतमो भाग परमाणु स उच्यते ॥

अर्थात। जब किरणें सूर्य देवता की गवाक्ष से गृह के आंगन में प्रवेश करती हैं तब सहस्रों हजारों रजकण उडते हुए नजर आते हैं। उन में जो सूक्ष्म रजकण दृष्टिगत होता है यह छः परमाणुओं का बना हुआ रजकण है। कहीं षष्टितमो भाग' भी पाठ मिलता है ? जिस में एक रजकण साठ परमाणुओं का ठहरता है।

आज के वज्ञानिक परमाणु की व्याख्या कुछ दूसरी प्रकार से करते है। आधुनिक वैज्ञानिकों का परमाणु अच्छा खासा मोटा है अर्थात बड़ा है उसके खण्ड भी हो जाते हैं और वह भौतिक दृष्टि से नजर भी आ जाता है। तो भी उन का *ख्याल है कि एक तोले स्वर्ण के खर्व वें भाग में साढ़े तीन (3½) खर्व परमाणु होते हैं।

एक और वैज्ञानिक ने परमाणु के आकार (Size) के विषय में अपने विचार देते हुए लिखा है कि एक परमाणु एक सैंटीमीटर के दस करोड़वें भाग के समतुल्य होता है।

आज यह भी बतलाया जाता है कि

एलक्ट्रान प्राटान और न्यूट्रौन का सम्मिलित रूप ही परमाणु है? जो एक अपार शक्ति का धनी है?

जिस प्रकार दूसरे दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने परमाणु की विभिन्न परिभाषाएं बतलाई हैं और उस के स्वरूप को यथाशक्ति समझाने का प्रयत्न किया है उसी प्रकार जैन शास्त्रों में भी परमाणु के विषय में बहुत छानबीन की गई है?

परमाणु का यथावत स्वरूप दर्शाने का सफल प्रयास किया है जैनाचार्यों ने। भगवान महावीर की अमर आप्त वाणी के आधार पर?

देखो—विचार और विमर्श (हिंदी)

आज के वैज्ञानिक परमाणु का (Analysis) कर के उस में निहित शक्तियों का आविष्कार करते हैं। किन्तु जैन धर्म का परमाणु इतना स्थूल नहीं कि उस को दूर वीक्षण यन्त्र से देख कर उसके अन्तस्तल में झांका जा सके। जैन धर्म परमाणु को इतना छोटा मानता है कि कोई चक्षु उस को देख नहीं सकती और कोई यन्त्र उस की ओर संकेत नहीं कर सकता और न ही उस के गर्भ में प्रवेश कर सकता है? इतना सूक्ष्म परमाणु होता है? यदि एक परमाणु सरोवर की धार में से हो कर निकल जाए तो वह धारा उस को छू नहीं सकती? वह परमाणु उस से भाग नहीं सकता? वह एक दीपक की लौ में से भी साफ बनकर निकल जाता है? दीपक की शिखा उस का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती? परमाणु वायु में से गुजरता हुआ भी उस में अछूता रहता है? ऐसे परमाणु की सूक्ष्मता का प्रतिपादन किया गया है जैनागमों में? जैन सूत्रों में निम्न प्रकार से परमाणु की परिभाषा की गई है कि जैसे

अप्रदेस

जिस का कोई अवयव नहीं

अमज्झ

जिस का कोई मध्य भाग भी नहीं

अणड्ढ

जिस का अध भाग भी नही होता या यू कहिये कि जिस से पर और सूक्ष्म नहा हो सकता उसे कहते हैं परमाणु। किन्तु इतने से सूक्ष्म अप्रत्यक्ष अगोचर और अपरिलक्षित पुदगलकण म असोम शक्ति, वण गन्ध रस और स्पश का रूप मे अन्तर निहित होती है

परमाणु की द्रव्य क्रिया

परमाणु भी द्रव्य है और आप जानते हैं कि द्रव्य गुणो का भाजन होता है

*निश्चय नय से एक परमाणु पाच वण दो गन्ध, पाच रस और चार स्पर्शो का स्वामी होता है ? और व्यवहार नय से एक परमाणु म एक वण एक गन्ध एक रस और दो स्पश होत ह । शेष तिरोभाव म रहते ह ?

स्मरण रहे कि पुदगल' म स्पश आठ होते है

जसे कि —

१ कोमल	५ शति
२ ककश	६ उष्ण
३ लघु	७ रूक्ष
४ गुरु	८ स्निग्ध

इन अठ स्पर्शो म से परमाणुओ मे एक समय म चार स्पश होते हैं जसे कि

शीत— उष्ण रूक्ष — स्निग्ध

उपयुक्त स्पश चतुष्टय मे से एक परमाणु म एक समय एक साथ केवल दो स्पश पाये जाते हैं कारण कि शेष एक दूसरे क विरोधी है और नियम है कि परस्पर विरोधी गण एक स्थान पर एक समय एक सग कदापि नही रह सकत ।

---

*यह लखक का अपना मत है ?

उक्त चार स्पर्शों के चार विकल्प बन जाते हैं जैसे कि
१—शीत और रूक्ष
२—शीत और स्निग्ध
३—उष्ण और स्निग्ध
४—उष्ण और रूक्ष

इन चार विकल्पों में एक परमाणु में एक विकल्प एक समय और एक साथ पाया जा सकता।

कई तत्त्वप्रिय बन्धु पूछ सकते हैं कि आप यह परमाणु का विश्लेषण किस आधार पर कर रहे हैं! जब कि यह सब अतीन्द्रिय है इस का एक ही उत्तर है कि सर्वज्ञ की देशना के आधार पर। हमारी अपनी इन्द्रियां सूक्ष्म-जगत में नहीं पहुंच सकतीं

[परमाणु की गति]

जब परमाणु स्थिर होता है तब उसमें शीत और रूक्ष स्पर्श होता है। ये दोनों गुण स्थिति विधायक हैं! ज्यों २ शीतत्व और रूक्षत्व का ह्रास होता जाता है या यूं कहिये कि इन की मात्रा धीरे धीरे कम होती जाती है त्यों २ उष्णत्व और स्निग्धत्व की मात्रा धन की वृद्धि के शिखरों पर चढ़ती जाती है! अर्थात् बढ़ती जाती हैं।

जब शीत की का सर्वथा तिरोभाव हो जाता है और उष्णत्व की अभिव्यक्ति हो जाती है तब परमाणु गति करने लग जाता है। इस प्रकार परमाणु एक स्थान से दूसरे स्थान पर गति करता है और स्निग्धता उष्णता ही इसकी दो मुख्य प्रवर्तक शक्तियां हैं!

गति की मदता तीव्रता

उष्णता और स्निग्धता यदि मन्द होगी तो गति भी मन्द होगी । और य दोनो गुण तीव्र और उत्कृष्ट होगे तो गति भी तीव्र और उत्कृष्ट होगी । जब परमाणु एक आकाश प्रदेश से चल कर साथ वाले दूसरे आकाश प्रदेश पर ठहरता है । तो उस समय उस की 'सवता जघन्य गति' कही जाता है किन्तु जब ये दोनो गुण अनन्तता को छूते हैं तब परमाणु एक समय म उत्कृष्ट गति करता हुआ चौदह राजू प्रमाण लोक क अन्त तक पहुन्च जाता है । य परमाणु का जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्य क्रिया है

परमाणु की भाव क्रिया—

परमाणु म वर्ण रस और गन्ध आदि जितन गुण हैं य सब प्रति समय परिवर्तन होते रहते हैं । जिस को पर्याय कहते है जैन धर्म मानता है कि जघन्य गुण वाला परमाणु काला तर म अनन्त गुण काला हो जाता है और अनन्त गुण काला बन कर वह धीरे धीरे फिर जघन्य गुण काला बन जाता है । ठीक इसी प्रकार दूसरे वर्ण रस गन्ध आदि गुण भी परिवर्तन के चक्र म परिभ्रमण करते रहते हैं यही परमाणु की भाव क्रिया है ।

निमित्त से उपादान मे परिवर्तन

दो प्रकार का कारण होता है ।

१—निमित्त कारण
२—उपादान कारण

जो कारण स्वय ही कार्य रूप म परिणत हो जाये उसे

[काल के सब स छोटे भाग को समय कहते है]

उपादान कारण कहते है। और जो उपादान कारण को कार्य रूप दे कर अलग हो जाय उसे निमित्त कारण कहते है।

जैसे कि उदाहरण लीजिए।

घट मे मृतिका उपादान कारण है। क्योंकि मत्तिका ही घटाकार मे परिणत हो रहती है। दण्ड और चक्र आदि इस मिट्टी को घट रूप दे कर पृथक हो जाते हैं। ये सब के सब निमित्त कारण हैं। याद रहे उपादान कारण स्वय ही कार्य रूप मे नहीं आ जाता जब तक कि उसे निमित्त कारण न मिल जाय। और निमित्त भी तबतक अकिंचित्कर है जब तक उपादान कारण का सयोग न मिल जाये। निमित्त और इन दोनों के मिलाप मे एक ऐसी अचित्य शक्ति पैदा हो जाती है जो उपादान को कार्य के रूप मे परिणत कर देती है, बाह्य कारण कलाप को पा कर स्कध की दो प्रकार से परिणति होती हैं।

१—प्रयोग से (Instrumental)
२—विश्रसा से (Automatic)

जो स्कध ठोस नहीं वह अनुकूल सामग्री पा कर विश्रसा (Automaticaly) बदल जाता है किन्तु इस परिवर्तन (change) का क्रम मन्द रहता है तथा प्रयोग से स्कध मे शीघ्र ही तबदीली (changengs) लाई जा सकती है।

(घनीभूत (Concrete) पदार्थ मे परिवर्तन)

अब बात आती है ठोस पदार्थ की परिणति की वह भी पर्यायान्तर मे जा सकता है। यदि उसे विशुद्ध और उपयुक्त निमित्त कारण की उपलब्धि हो जाये। जैसेकि(१)रासायनिक प्रयोग से या

पारस मणि के सस्पर्श से लोहा भी सुवर्ण बन जाता है जिस मे पहले सुवर्णत्व नही था और अब उसमे लोहत्व नही रहा इतना परिवर्तन हो गया है उस स्कन्ध के अणुओं मे।

एक और उदाहरण।

पत्थर के कोयले मे काला वर्ण ही दिखाई देता है। दूसरा कोई वर्ण उस मे दृष्टिगोचर नही होता किन्तु कितने आश्चर्य की बात है, वही काला कलूटा कोयला वनानिक विधि से हीरा बन जाता है। उसका कालापन सब जाता रहता है। उसी से फिर समुज्ज्वल चमकदार किरणें फूट फूट कर निकलने लगती हैं।

(३) पुद्गल की विभिन्न परिणतियें

एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक जितने भी प्राणी भूत जीव और सत्व है वे सब पुद्गल को ग्रहण करते है और वह ग्रहण किया हुआ पुद्गल ही इन्द्रिय मन भाषा, श्वासोश्वास रक्त मास, हड्डी चाम मल मूत्र औदारिक वक्रिय, आहारिक तैजस और कार्मण आदि पाचो शरीरो के रूप मे परिणत हो जाते हैं।

उदाहरण–

[१] जितनी भी ससार मे धातुए हैं व सब पृथ्वीकाय के औदारिक शरीर हैं। जिस मे जान होता है वह धन धान्य वृद्धि पाता जाता है। जैसे कि खान का पाषाण। और भी देखिये। एक शिला है उस मे एक हीरे की नन्ही सी कणी

पड़ी है । हजारों सालों के पश्चात वहां कणों स्थूल आकार में बदल जाती है कैसे भला ? जैन धर्म इस का समाधान उपस्थित करता है । कि जिन पृथ्वीकाय के जीवों ने उद्योत नाम कर्म बांधा हुआ है व जीव जब दिन दिन बढ़ते जाते हैं तब वह हीरे की कणी भी बड़ा होती जाता है।इसी प्रकार अन्य सभी रत्नों के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिये ।

(२) एक वृक्ष है । उस का बीज धरती में पड़ा हुआ जो पुद्गल खींचता है । वह धीरे २ बढ़ता हुआ अपने योग्य पुद्गल को लकड़ी पत्र फल फूल आदि के रूप में परिणत करता रहता है ।

(३) अब एक मुक्ति का लीजिये । सीप में रहने वाला द्वीन्द्रिय जीव जल की बूंद को मोती में बदल देता है ।

(४) अग्नि की भट्टी में पड़ा हुआ पत्थर समय पा कर सफेद रंग का चूना बन जाता है ।

(५) घास फूस की गर्मी देकर कच्चे फल को पका कर उस के खट्टे रस को मधुर बना लिया जाता है ।

(६) प्रसूता गौ, भैंस आदि पशु सूखा घास एवं तूड़ी आदि खा कर और जल पी कर फिर उस खाये और पीये का कुछ भाग दूध में परिणत हो जाता है ।

(७) मनुष्य अनन्त गुण सुगन्धित पदार्थों का आहार कर भी उसे अनन्त गुण दुर्गन्धित बना कर उन का विसर्जन करता है ।

(८) ईख का रस अपने में पर्याप्त माधुर्य रखता है किन्तु कालान्तर में वह मधुर रस खट्टा हो जाता है ।

(९) पुराने गुड़ से मदिरा बनाते हैं सुरा के रूप में आने के बाद फिर उस में मधुरता बिल्कुल नहीं रहती ।

(१०) एक मच्छी ऐसी बताई जाती है जो श्वास छोड कर खारे पानी का भी मीठा बना देती है, मीठा बना कर फिर उसे पी जाती है।

(११) दही की खटास लगाने से दूध भी दही के रूप में परिणत हो जाता है।

इस प्रकार पुद गलकी नाना रचनाएं दृष्टिपथ पर आती हैं। कुछ प्रयोग से और कुछ विश्रसा से किन्तु इतना स्मरण रहे कि प्रयोग से उत्पन्न परिणति व्यवस्थित होता है और विश्रसा जन्य परिवर्तन कुछ इतना सुव्यवस्थित नहीं होता और फिर उसमें काल की अधिकता भी अपेक्षित है।

स्कन्ध की निष्पत्ति —

स्कन्ध कैसे बनता है — इस की जानकारी के लिये कुछ ज्ञातव्य बातें स्मरण रखनी चाहिये—

स्निग्ध और रूक्ष अवयवों का श्लेष दो प्रकार से होता है।

१—सदृश
२—विसदृश

सदृश —स्निग्ध का स्निग्ध के साथ और रक्ष का रूक्ष के साथ संयोग होना सदृश श्लेष कहा जाता है —

विसदृश —स्निग्ध का रक्ष के साथ संयोग होना विसदृश श्लेष कहा जाता है।

किन्तु दोनों प्रकार के श्लेषों में निम्न नियम स्मरणीय है।

परमाणु—पुद्गल का अविभाज्य अच्छेद्य अभेद्य अदाह्य अक्लेद्य और अग्राह्य अमध्य और अनध विभाग अपनी पृथक् अवस्था मे परमाणु कहा जाता है।

परमाणु मे निम्न गुण पाये जाते हैं।

१—एक वर्ण
२ एक गन्ध
३—एक रस
४—दो स्पर्श

(१) नित्य-

द्रव्यत्व की अपेक्षा से परमाणु नित्यत्व गुण वाला है।

(२) अनित्य-

पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है।

सभी आचार्यों का यही मत है इस से सिद्ध होता है कि कोई भी परमाणु कालान्तर मे किसी भी परमाणु के सदृश या विसदृश बन सकता है।

पर्याय परिवर्तन का स्वरूप

यह परमाणु के रूप मे जो पर्याय बदलता है वह इस प्रकार है।

जघन्य गुण — गुण हा
और अनन्त गुण — जान
इस का भाव — परमा
कालान्तर मे

समय पा कर अनन्त गुण काले से जघन्य गुण काला बन जाता है। ऐसी पर्याय परिणति सदैव ही परमाणु पुद्गल मे होती रहती है। यह परमाणु की पर्याय परिवर्तन का प्रथम स्वरूप है।

परमाणु की दूसरी तरह की पर्याय यह है। जैसे कि काले से लाल या सफेद हो जाना।

सुगन्ध वाले से दुर्गन्ध वाला हो जाना। मधुर रस से अम्लत्व आदि पांचों मे से कोई रस वाला बन जाना। एक रूप मे स्निग्ध स्निग्ध से रूक्ष हो जाना यह परमाणु गत पर्याय का दूसरा स्वरूप है किन्तु ऐसी पर्याय परिणति प्राय स्कन्धगत परमाणु मे होती है? स्कन्ध मे परिवर्तन तभी हो सकता है जब कि वर्तमान मे रहे हुए वर्ण गन्ध और रस आदि जघन्य गुण तक न पहुच जाय। जरा और स्पष्ट रूप से समझिये।

हमारे पास एक वस्तु है। जिस का रंग काला है जब तक उस का वर्ण घटते २ जघन्य गुण काला न बन जाये तब तक वह दूसरे रंग मे तबदील नहीं हो सकता।

वर्ण रस और गन्ध व स्पर्श ये चारों बदलते हैं। इस विषय मे प० सुख लाल जी की मान्यता देखिये?

उन्होंने उपर्युक्त तीन सूत्रों की व्याख्या लिखते हुए कहा है कि —

पण्डित सुख लाल जी की मान्यता –

समाज्ञ स्थान म सन्दा बध तो होना नही विसदृश होता है। जसे—दो अश स्निग्ध या दो अंश रुक्ष के साथ। या तीन अश स्निग्धका तीन अ श स्निग्ध के साथ एम स्थल म कोई एक सम दूसरे सम का अपने रूप म परिणत कर लेना है।

अर्थात द्रव्य क्षेत्र काल और भाव के अनुसार कभी स्निग्धत्व हा रूक्षत्व का स्निग्धत्व के रूप म बदल लेता है और कभी रूक्षत्व स्निग्धत्व का रुक्षत्व रूप मे बदल लेता हैं परन्तु अधिकाश स्थल म अधिकांश ही हीनांश को अपने स्वरूप मे बदल सकता है। जैसे कि — पचाश स्निग्धत्व तीन अंश स्निग्धत्व का अपने स्वरूप मे परिणत करता है अर्थात तीन अश स्निग्धत्व भी पाच अश स्निग्धत्व के सम्बन्ध म पाच अश परिमाण हो जाता है। इसी तरह पाचाश स्निग्धत्व तीन अश रुक्षत्व को भी स्व स्वरूप म मिला लेता है, अर्थात् रूक्षत्व अधिक हो ता वह भी अपने स कम स्निग्धत्व रूप से बदल जाता है? जब रूक्षत्व अधिक हो तो वह भी अपने स कम स्निग्धत्व का अपने स्वरूप अर्थात् रुक्षत्व स्वरूप बना लेता है'

यह है प० सुख लाल जी की उक्त विषय म निजी मान्यता। जब रुक्षत्व स्निग्धत्व के रूप म बदल सकता है और स्निग्धत्व रुक्षत्व के रूप मैं बदल सकता है तो उसी प्रकार अन्य वर्ण गध आदि मे भी परिवर्तन हो सकता है?

यह बात पं० श्री सुख लाल जी की उक्त पक्तियों से भली भान्ति सिद्ध हो जाती है ?

इस स्थल पर इतनी बात ध्यान देने योग्य और है जसे कि वर्ण आदि बदलने पर यह आवश्यक नहीं कि रस और स्पर्श भी साथ हो बदल जाय। क्योंकि कोई गुण जघन्य गुणा तक पहुञ्चा होता है तो कोई नहीं। आप के समक्ष एक उदाहरण है।

उदाहरण

कल्पना कीजिए एक जघन्य गुण वाला काला परमाणु है। जो कि रूक्षता में दस गुणा *। वह अनन्त गुण पीले और स्निग्ध परमाणु में जा मिला। मिलन के बाद यदि वह अभीष्ट काल तक स्कन्द रूप में रहे तो जघन्य गुण काल परमाणु का पीला बनना में इतना देर नहीं लगेगी जितनी कि स्निग्ध, बनने में क्योंकि दस गुणा रूक्षता घटते २ जब जघन्य गुण रूक्षता में पहुञ्च जायेगी तब किसी भी समय वही परमाणु जघन्य गुण रूक्षता से निवत होकर जघन्य गुण स्निग्धत्व को प्राप्त हो जाता है? अभीष्ट काल तक वह यदि मिलाही रहे तो वह परमाणु सख्यात गुण असख्यात गुण अनन्त गुण पीला और स्निग्ध हो सकता है।*यदि वहपीलापरमाणु स्कन्ध से अलग होकर जितना देर रहेगा तो वह उतनी देर तक उसी वर्ण आदि में ही ह्रास और विकास करता रहता है जो स्कन्ध से अलग होने समय थे।

---

*परमाणु परमाणु के रूप में जघन्य एक समय उत्कृष्ट असख्यात काल तक परमाणु रह सकता। अधिक नहीं।

परमाणु का गुण-विकास

परमाणु गत स्निग्ध और उष्ण स्पर्श के कारण तद्गत वर्ण गंध आदि गुण विकास की ओर अग्रसर होते हैं।

परमाणु का गुण ह्रास

शीत और रूक्ष स्पर्श के कारण वही गुण ह्रास की ओर अपना पग बढाते है।

शंका —

जब परमाणु जघन्य गुण काला बन गया और गंध रस जघन्य गुण तक नहीं पहुंचे तब पूर्वोक्त परमाणु अनन्त गुण पीले स्कन्ध में मिल जाने से कालान्तर में वह जघन्य गुण काला निवृत्त हो गया। जघन्य गुण पीला अभी बना नहीं तब तो वह परमाणु वर्ण रहित होने से अद्रव्य हो जायगा किन्तु ऐसा होना सिद्धान्त विरुद्ध है। क्योंकि गुण, द्रव्य के आश्रित होता है और गुण और पर्याय वाला ही द्रव्य होता है जैसे कि

गुणपर्यायवत् द्रव्यम (३७)

द्रव्याश्रया गुणा। तत्वार्थ सूत्र अ० ५

अत वर्ण से रहित होने से परमाणु में द्रव्यत्व नहीं

रह सकता ?

समाधान -

अनुकूल सामग्री की विद्यमानता में कार्यकाल और निष्ठाकाल युगपद् ही होता है। क्रमशः नहीं। उदाहरण स्वरूप अनन्तानुबंधी कषाय और दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियों के क्षय का क्षायिक सम्यक्त्व आविर्भाव का कार्यकाल और निष्ठाकाल युगपद ही होता है? क्रमशः नहीं। ठीक इसी तरह। घातिकर्मों का क्षय केवलज्ञान की उत्पत्ति का कार्य काल और निष्ठा काल युगपत ही होता है अर्थात जिस समय घाति कर्मों का क्षय होता है उसी समय केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। दोनों में कोई अन्तर या व्यवधान नहीं होता इसी सिद्धान्त की अपेक्षा जघन्य गुण कृष्णत्व का तिरोभाव और पीत वर्ण का आविर्भाव युगपद ही होता है। इन में अन्तराल नहीं होता ? अतएव परमाणु वर्ण रहित नहीं होता ? द्रव्य से अद्रव्य कदापि नहीं होता ?

कईयों का कहना है कि एक काला परमाणु कभी भी सुफेद आदि नहीं हो सकता। क्योंकि यदि ऐसा हो जाय तो द्रव्य की लीला ही समाप्त हो जाय। उनका कहना है कि जघन्य गुण काला से अनन्तगुण काला तो हो जाता है किन्तु काले से लाल पीला या नीला कदापि नहीं होता। क्योंकि उनके मत में परमाणु में निश्चयनय की दृष्टि से भी केवल एक वर्ण एक रस एक गन्ध और दो स्पर्श ही पाये जाते हैं। ये आप के सम्मुख दो मत हैं इन्हें अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसिये और देखिये इनमें से कौन सा खरा एवं युक्तिसंगत है।

ता स्पर इस प्रकार परमाणु मे द्रव्य क्रिया और भाव क्रिया चलता रहती । यह सारा ससार परमाणु की विचित्र रचना संगठन और मेल मिलाप का ही विराट परिणाम है ता फिर इस मूर्तिमान विशाल ससार म परिवतन क्या न हो।

ज्ञानियो न इस परिवतन शील ससार के सुख—सुमन को भी क्षणिक मान कर केवल चिरतन सुख केलिये आत्म निष्ठा होने का उपदेश दिया है। हम सिद्ध (परमात्म) स्वरूप जीव की द्रव्य और भाव क्रिया का आगे चल कर वणन करेगे।

ऐटम

हम आपको पहले बता आये हैं कि अन त सूक्ष्म परमाणुओ के सम्मेलन स एक व्यावहारिक परमाणु का जन्म होता है। और वह भी छोटा इतना होता है कि गगा नदी के महा स्रोत में स निकलकर पार हो जान पर भी आर्द्रित नही होता जो अत्यन्त सुतीक्ष्ण शस्त्रास्त्र से काटा नही जा सकता। लेखक का विचार है कि सभव है कि आधुनिक वज्ञानिको का 'ऐटम (Atom) वही हो जिस हम व्यवहार परमाणु कहते हैं।

मेरे विचार म अन त परमाणुओ का समूह ही आज क युग का ऐटम है क्योकि व्यावहारिक परमाणु जब गगा के महास्रोत स पार हो कर भी गीला नहीं होता और किसी तीक्षण से तीक्षण शस्त्रास्त्र से काटा नही जाता तो भला उसका किसी वज्ञानिक य त्र द्वारा विश्लेषण कैसे हो ★

विद्युत् Electric

हमारा विचार है कि विद्युत की चमत्कार पूर्ण अनुपम शक्ति का केन्द्र वास्तव में परमाणुओं का संघात संघर्षण और तज्जनित अनन्त उष्णता है॥ विद्युत लहरियां उष्णता और स्निग्धता के कारण ही गति करती है।

वैशेषिक आदि दर्शन परमाणु में भाव क्रिया नहीं मानते। उनका कहना है कि जो परमाणु जल का है वह सदा जल का ही बना रहता है।

और जो परमाणु तेज का वह सदा तेज का ही हो रहता है। दोनों एक दूसरे के रूप में परिवर्तित नहीं होते। किन्तु जैन धर्म प्रत्येक परमाणु को—

द्रव्य और गुण से हो परिवर्तन शील मानता है। यह परिवर्तन दो प्रकार से होता है

★ संक्षा। क्योंकि वर्तमान विज्ञान ने परमाणु की असीम शक्तियों का अनुसन्धान किया है जो केवल प्रत्यक्ष होने पर ही सम्भव हो सकता है। अतः व्यावहारिक परमाणु को 'ऐटम' नहीं कहा जा सकता है। हां-उसके अनन्त रूप को किसी प्रकार से एटम कहा जा सकता है। क्या कि ऐसी दशा में उस का वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा निरूपण सम्भव हो सकता है।

(सम्पादक)

ता गर इस प्रकार परमाणु म द्रव्य क्रिया और भाव क्रिया चलता रहता। यह सारा ससार परमाणु की विचित्र रचना संगठन और मेल मिलाप का ही विराट परिणाम है तो फिर इस मूर्तिमान विशाल ससार म परिवतन क्या न हो।

ज्ञानियों ने इस परिवतन शील ससार के गुरा—गुमन को भी क्षणिक मान कर केवल चिरतान सुख केलियेआत्म निष्ठ होन का उपदेश दिया है। हम सिद्ध (परमात्म) स्वरूप जीव की द्रव्य और भाव क्रिया का आगे चल कर वणन करेंगे।

ऐटम

हम आपको पहले बता आये हैं कि अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं के सम्मेलन से एक व्यावहारिक परमाणु का जन्म होता है। और वह भी छोटा इतना होता है कि गगा नदी के महा स्रोत मे से निकलकर पार हो जाने पर भी आर्द्रित नही होता जो अत्यन्त सुतीक्ष्ण शस्त्रास्त्र से काटा नही जा सकता। लेखक का विचार है कि सभव है कि आधुनिक वज्ञानिकों का 'ऐटम' (Atom) वही हो जिसे हम व्यवहार परमाणु कहते हैं।

मेरे विचार मे अनन्त परमाणुओं का समूह ही आज के युग का ऐटम है क्योंकि व्यावहारिक परमाणु जब गगा के महास्रोत से पार हो कर भी गीला नहीं होता और किसी तीक्षण से तीक्षण शस्त्रास्त्र से काटा नहीं जाता तो भला उसका किसी वैज्ञानिक यन्त्र द्वारा विश्लेषण कैसे हो ★

विद्युत् Electric

हमारा विचार है कि विद्युत की चमत्कार पूर्ण अनुपम शक्ति का केन्द्र वास्तव में परमाणुओं का संघात संघर्षण और तज्जनित अनन्त उष्णता है॥ विद्युत लहरियां उष्णता और स्निग्धता के कारण ही गति करती है।

वैशेषिक आदि दर्शन परमाणु में भाव क्रिया नहीं मानते। उनका कहना है कि जो परमाणु जल का है वह सदा जल का ही बना रहता है।

और जो परमाणु तेज का वह सदा तेज का ही हो रहता है। दोनों एक दूसरे के रूप में परिवर्तित नहीं होते। किन्तु जन धर्म प्रत्येक परमाणु को—

द्रव्य और गुण से ही परिवर्तन शील मानता है। यह परिवर्तन दो प्रकार से होता है

★ सकता। क्योंकि वर्तमान विज्ञान ने परमाणु की असीम शक्तियों का अनुसंधान किया है जो केवल प्रत्यक्ष होने पर ही सम्भव हो सकता है। अतः व्यवहार परमाणु को ऐटम नहीं कहा जा सकता है। हां-उसके अनन्त रूप को किसी प्रकार से ऐटम कहा जा सकता है। क्योंकि ऐसी दशा में उस का वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा विश्लेषण सम्भव हो सकता है।

(सम्पादक)

(१) विश्रसा ग
(२) प्रयोग स

जो क्रिया स्वभाविक होती रहती है उसे विश्रसा कहते हैं। जो क्रिया किसी जीव के निमित्त से होती है – उस को प्रयोगज कहते हैं।

जैन सिद्धान्त गायक परमाणु को विश्रसा से प्रगतिशील मानता है।

एक द्रव्य का दूसरे स्थान पर चल जाना ही द्रव्य क्रिया है और एक गुण का दूसरे गुण में बदल जाना भाव क्रिया है। जैसे काले का सफेद हो जाना और सफेद का काला हो जाना। एक परमाणु स्वयं ही इन समस्त अवस्थाओं में से गुजरता रहता है।

इसके आगे हम जीव गत द्रव्य क्रिया और भाव क्रिया का वर्णन करेंगे।

'योग'

जीव में अपरिमित वीर्य है। यह अनन्त शक्तियों का पुञ्ज है तथा भण्डार है। आत्मा के वीर्य को जब मन वचन और काय का सहयोग मिलता है तब आत्मा में प्रदेशों में परिस्पन्दन होने लगता है। उसी को योग कहते हैं या यूं कहिये कि मन, वचन और काया के व्यापार का नाम ही योग है और यही आत्मा की द्रव्य क्रिया है। बिना मन, वचन और काया के आत्मा का वीर्य निष्क्रिय रहता है। इस को और अधिक स्पष्ट करने के लिये एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

एक चुम्बक है। उस में आकर्षण शक्ति रहती है। किन्तु जब तक लोहकण उस के सामने नहीं आते तब तक वह (मिकनातीसा) शक्ति निष्क्रिय रहती है। लोह के सम्मुख आते ही चुम्बक शक्ति सक्रिय हो उठती है। दोनों का सान्निध्य एक दूसरे में सक्रियता उत्पन्न कर देता है। इसी प्रकार आत्मवीर्य के बिना मन वचन और काया में कोई व्यापार नहीं होता तथा मन वचन और काया के बिना बलवीर्य निष्क्रिय है। दोनों का सामीप्य एक दूसरे में व्यापारशीलता का संचार करता है।

जीव की द्रव्य क्रिया द्विविध से होती है —

१— विश्रसा से

२— प्रयोगज से

स्वाभाविक द्रव्य क्रिया को विश्रसा कहते हैं।

आंखों की पलक आप के सामने हैं इन का निमेषोन्मेष स्वयमेव चलता रहता है हमारे उपयोग पूर्वक प्रयत्न के बिना ही अपनी स्वाभाविक क्रिया में संलग्न रहती हैं। यही उदाहरण शरीर में नसों और नाडियों की क्रिया और उन में रक्त संचरण पर घटित होता है। ये सब अनुपयोग पूर्विका क्रियाएं हैं जिन को हम शास्त्र की भाषा में प्रयोगज कहते हैं।

उपयोगपूर्विका क्रिया दो प्रकार की होती है।

१— प्रयोगज क्रिया

२— उपाय क्रिया

प्रयोगज–

हम ऊपर कह आये हैं कि आत्मा अनंत वीर्य का स्वामी है। जब इस का संबंध (Conn--- on) मनोद्रव्य के साथ होता है तो मनो द्रव्य में एक प्रकार का स्पन्दन होता है। उसी को मनो योग' कहा जाता है। उस मनोयोग में असंख्य विचार लहरियां उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार से वचन द्रव्य से संबंध होने पर वचन योग की निष्पत्ति होती है। और उस से शब्द और भाषा का जन्म होता है।

काय द्रव्य से संयोग होने पर काय स्पन्दन होकर काययोग का निष्पादन होता है जिस से गमनागमन, उठना बैठना सकोचना पसारना हलना-चलना आदि क्रियाएं स्फुटित होती हैं जिस को हम काय-योग कहते हैं ये सब प्रयोगज क्रियाएं कही जाती हैं।

उपाय क्रिया—

घट और पट आदि पदार्थ आप के सामने हैं इन के निर्माण में कारण से काय तक कुछ विशेष ढंग की क्रियाएं हुई हैं। इन का आश्रयण किये बिना घट पट आदि द्रव्य कभी उत्पत्ति की भूमिका पर आ नहीं सकते थे। तो इन के आदि (प्रारम्भ) से अन्त तक जो क्रिया का प्रवाह चला है वे सब उपाय-क्रियाएं कहलाती हैं।

उदाहरण—

एक घड़ा बनाने के लिये पहले मिट्टी खोदना उसे गधे

पर रख कर घर ले जाना, गारा बनाना और फिर उस का मर्दन करना। उस का मृत्पिण्ड बना चाक पर चढ़ाना। दण्ड से चक्र चलाना, (घुमाना) घड़ा बना कर उसे सुखा देना और फिर आवाप में पकाना इन सब क्रियाओं के पश्चात् उसे बेचने के लिये दुकान पर सजाना या मण्डी और मेले आदि में लेजाना। वास्तव में ये समस्त क्रियायें उपाय-क्रियाएं कही जाती हैं।

क्रियावादी–

क्रिया के सम्यक् अर्थ में विश्वास रखने वाला क्रियावादी कहा जाता है। क्रिया के यथार्थ भाव को कुछ और स्पष्ट किया जाता है।

करण क्रिया कर्म बन्धन निबन्धन चेष्टा द्रव्येव वदित नाम यस्य स क्रियावादी।

जिस चेष्टा में जीव कर्म से लिप्त हो उसे कहते हैं क्रिया, और क्रिया से जीव कर्मों से बंधता है। इस प्रकार कहने का जिस का स्वभाव है। उसे क्रियावादी कहते हैं क्रिया दो प्रकार की होती है जैसे कि स्थानाङ्ग सूत्र के दूसरे स्थान में कहा है—

दो किरियाओ पन्नत्ताओ तंजहा जीव-
किरिया चेव अजीव किरिया चेव

क्रिया दो प्रकार की होती —

१—जीव क्रिया

२—अजीव क्रिया

जीव क्रिया—

जीव के व्यापार को जीव क्रिया कहते हैं।

अजीव क्रिया—

पुद्गल समूह को कर्म रूप मे परिणत होने को अजीव क्रिया कहा जाता है अजीव क्रिया के दो भेद है जैसे कि

१—ऐर्यापथिकी
२—साम्परायिकी

ऐर्यापथिकी—

कषाय के अभाव मे जो केवल योग के कारण से लगती है उसे ऐर्यापथिकी क्रिया कहते हैं। यह क्रिया केवली भगवान को सयोगि अवस्था मे रहती है जिसका प्रथम समय मे उपार्जन दूसरे क्षण मे वेदन (अनुभूति) और तीसरे समय मे क्षय हो जाता है।

साम्परायिकी क्रिया—

यह क्रिया कषाय नैमित्तक है। जिस की धारा जीवन की छद्मस्थ अवस्था मे न्यूनाधिक रूप मे बहती रहती है।

इस क्रिया के चौबीस भेद होते है। जरा देखिये।

नीचे का भार—

कायिकी—

शरीर की असावधानी से जिस क्रिया का सृजन होता उसे कायिकी क्रिया कहते हैं।

अधिकरणिकी—

तलवार आदि के द्वारा संक्लिष्ट परिणामों से किसी का घात कर देना अधिकरणिकी क्रिया है।

प्राद्वेषिकी—

जीव और अजीव पर द्वेष करना ही प्राद्वेषिकी क्रिया कहते हैं।

पारितापनिकी—

अपने आप और दूसरों को दुख देने का नाम पारितापनिकी क्रिया है।

प्राणातिपातिकी—

दूसरे के प्राणों का अपहरण करना प्राणातिपातिकी क्रिया कही जाती है।

आरम्भिकी—

खेती वाडी से जिस क्रिया का उपचय होता है उसे कहते हैं आरम्भिकी ।

पारिग्रहिकी—

धन आदि के ममत्व से पारिग्रहिकी क्रिया लगती है।

माया प्रत्ययिकी—

दूसरो से छल करने से माया प्रत्ययिकी का सचय होता है।

मिथ्या—दशन प्रत्ययिकी—

वीतराग-माग से उलटा श्रद्धान करन से । मिथ्यादशन प्रत्ययिका क्रिया का उपाजन होता है।

अप्रत्याख्यानिकी —

सयम के घातक कषाया के उदय से लगने वाली क्रिया अप्रत्याख्यानिकी कहत है

दृष्टिकी—

रागादि कलुषित भावो से लगने वाली दष्टिकी क्रिया कही जाती है ।

स्पृष्टिकी—

राग युक्त भाव से किसी जीव और अजीव आदि पदार्थ को छूने से उत्पन्न होने वाली क्रिया को स्पृष्टिकी कहते हैं

प्रातीत्यकी—

कर्म बंध में लगने वाली को प्रातीत्यकी क्रिया कहते हैं।

नैशस्त्रिकी—

शस्त्र आदि के बनाने से नैशस्त्रिकी क्रिया लगती है।

स्वहस्तिकी—

अपने हाथ द्वारा मारने से स्वहस्तिकी क्रिया लगती है।

आनयनिकी—

पदार्थों को लाने और ले जाने से जन्म लेने वाली क्रिया आनयनिकी होती है।

विदारिणिकी—

किसी वस्तु को फाड़ने से लगने वाली क्रिया को विदारिणिकी कहते हैं।

अनाभोगिकी—

उपयोग बिना कोई काम करने से अर्जित क्रिया

अनाभोगिकी कहते हैं ।

अनवकांक्षा प्रत्ययिकी—

लोक परलोक विरुद्ध आचरण करना अनवकांक्षा प्रत्ययिकी' क्रिया है।

प्रायोगिकी—

योगो के अयोग्य व्यापार को प्रायोगिकी क्रिया कहते हैं ॥

सामुदायिकी—

समुदित कर्म-निर्बंधनी क्रिया को सामुदायिकी कहते हैं ॥

प्रेमिकी—

माया-लोभ जनक क्रिया प्रेमिकी होती है ।

द्वेषिकी—

क्रोध मान जनक क्रिया द्वेषिकी कही जाती है य हैं। साम्परायिकी क्रिया के चौबीस भेद ।

ईर्यापथिकी—

मात्र व्यापार मे लगने वाली क्रिया को ईर्यापथिकी क्रिया कहते हैं ।

ये हैं पच्चीस क्रियाए ।

क्रिया—

१—कर्म जन्य की कारण चेष्टा को क्रिया कहा जाता है
२—दुष्ट व्यापार विशेष को भी क्रिया कहते हैं। अजीव क्रिया के पश्चात् अब हम जीव क्रिया का वर्णन करेंगे।

जीव क्रिया दो प्रकार की होती है।

१—सम्यक्त्व क्रिया
२—मिथ्यात्व क्रिया

सम्यक् ज्ञान-पूर्वक की गई क्रिया सम्यक्त्व क्रिया कहलाती है। असम्यग्ज्ञान से की गई क्रिया मिथ्यात्व क्रिया कहा जाता है।

चेतन आश्रव—

आत्मा मे अनन्त गुण हैं उन मे से एक गुण योग भी है। उस योग की कम्पन अवस्था का नाम चेतन आश्रव है।

जड आश्रव—

योग सदा आकर्षणमय होता है। उस की आकर्षण शक्ति द्वारा कर्मवर्गणाओं का आत्म-प्रदेशों के संग चिपक जाना ही जड आश्रव कहा जाता है।

ये चेतन आश्रव और जड आश्रव आखिर जीव क्रिया और अजीव क्रिया के ही परिणाम विशेष हैं।

लेश्या—

आत्मा के अगणित गुणों में से एक गुण क्रिया का भी है! उस गुण की विकारी अवस्था को लेश्या कहते हैं। शरीरस्थ जीव में ही लेश्या का उदभव होता है। आत्मभाव से अनुरंजित योग की प्रवृति को लेश्या कहते हैं।

जहां योग एवं औदयिक भाव का अस्तित्व रहता है। वहां लेश्या की उपस्थिति आवश्यक है। इसी सिद्धान्त के अनुसार ही पहले गुणस्थान से लेकर १३ वें गुणस्थान पर्यन्त लेश्या की अवस्थिति रहती है। जहां लेश्या नहीं वहां औदयिक भाव भी नहीं। जैसे कि १४ वें गुणस्थान में और सिद्ध भगवान में लेश्या नहीं होती क्योंकि वहां योग एवं औदयिक भाव नहीं होता।

लेश्या का समावेश औदयिक भाव में होता है इस के लिये देखिये तत्त्वार्थ सूत्र—

गतिकषाय लिंग मिथ्या दर्शनाऽज्ञानाऽसंयताऽसिद्धत्व इचतुश्चतु स्त्र्येकैकैकषड्भेदा (तत्वार्थ सूत्र अ० २ सूत्र ६)

उपर्युक्त सूत्र में औदयिक भावों के इक्कीस भेदों का उल्लेख किया गया है? जैसे कि—

(१) चार गतियां—
१—नरक गति
२—तिर्यञ्च गति
३—मनुष्य गति
४—देव गति

(२) चार कषाय—
१—क्रोध
२—मान
३—माया
४—लोभ

(३) तीन लिंग —
१—स्त्री लिंग
२—पुरुष लिंग
३—नपुंसक लिंग

(४) तीन वेद —
१—स्त्री वेद
२—पुरुष वेद
३—नपुंसक वेद

१) मिथ्या दर्शन २) अज्ञान ३) असंयम ४) असिद्धभाव

(५) लेश्या छ
१—कृष्ण लेश्या
२—नील लेश्या
३—कापोत लेश्या
४—तेजो लेश्या
५—पद्म लेश्या
६—शुक्ल लेश्या

इस प्रकार कुल मिला कर इक्कीस औदयिक भाव होते है। जिन मे छ लेश्याए भी आ जाती हैं इसी

लेश्या—

आत्मा के अगणित गुणों में से एक गुण क्रिया का भी है। उस गुण की विकारी अवस्था का लेश्या कहते हैं। शरीरस्थ जीव में ही लेश्या का उद्भव होता है। आत्मभाव से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं।

जहां योग एवं औदयिक भाव का अस्तित्व रहता है। वहां लेश्या की उपस्थिति आवश्यक है। इसी सिद्धान्त के अनुसार ही पहले गुणस्थान से लेकर १३ वें गुणस्थान पर्यन्त लेश्या की अवस्थिति रहती है। जहां लेश्या नहीं वहां औदयिक भाव भी नहीं। जैसे कि १४ वें गुणस्थान में और सिद्ध भगवान में लेश्या नहीं होती क्योंकि वहां योग एवं औदयिक भाव नहीं होता।

लेश्या का समावेश औदयिक भाव में होता है इस के लिये देखिये तत्वार्थ सूत्र—

गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयताऽसिद्धत्वलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः (तत्वार्थ सूत्र अ० २ सूत्र ६)

उपर्युक्त सूत्र में औदयिक भावों के इक्कीस भेदों का उल्लेख किया गया है? जैसे कि—

(१) चार गतियां—
१—नरक गति
२—तिर्यञ्च गति
३—मनुष्य गति
४—देव गति

(२) चार कषाय—
१—क्रोध
२—मान
३—माया
४—लोभ

(३) तीन लिंग—
१—स्त्री लिंग
२—पुरुष लिंग
३—नपुंसक लिंग

(४) तीन वेद—
१—स्त्री वेद
२—पुरुष वेद
३—नपुंसक वेद

१) मिथ्या दर्शन २) अज्ञान ३) असंयम ४) असिद्धभाव

(५) लेश्या छः
१—कृष्ण लेश्या
२—नील लेश्या
३—कापोत लेश्या
४—तेजो लेश्या
५—पद्म लेश्या
६—शुक्ल लेश्या

इस प्रकार कुल मिला कर इक्कीस औदयिक भाव होते हैं। जिन में छः लेश्याएं भी आ जाती हैं इसी लिये

तो उपर कहा है कि लेश्या और औदयिक भाव का अविनाभाव सबध है। एक के बिना दूसरा नहा हो सकता।

इतना स्मरण रहे कि साम्परायिक क्रिया के अस्तित्व मे छहो ही लेश्याओ का सदभाव होता है। क्योकि वहा मोहनीय कर्म का उदय अनिवार्य है। किन्तु जहा ऐर्यापथिक क्रिया हो वहा तो केवल शुक्ल लेश्या ही पाई जाती है जब मोहनीय कर्म के बिना शेष ७ सात कर्म ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, वेदनीय, नाम, गोत्र आयुष्य और अतराय कर्म का उदय हो या घन घातिक ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अतराय कर्मो के बिना शेष भवोपग्रहीकर्म नाम गोत्र आयुष्य और वेदनीय कर्मो का उदय हो तब एक शुक्ल लेश्या हो होती है ? और लेश्याए वहा नही पाई जाती ? इस से सिद्ध होता है कि लेश्या योग एव औदयिक भाव जन्य है ?

द्रव्य लेश्या—

पुद्गल के वे सूक्ष्म परमाणु जो कषाय और योग से आकर्षित कषाय से अनुरजित और अपने २ वर्ण रस गन्ध और स्पर्श से अभिषिक्त हो कर कर्म-वर्गणाओ को आत्म प्रदेशो के साथ जोडने मे कारणभूत बन उस द्रव्य लेश्या कहते हैं।

भाव लेश्या—

आत्मा के वे भाव जो कषाय अथवा योग से मिल कर कृष्णादि लेश्या की उत्पत्ति मे कारण भूत बनते हैं उन को भाव लेश्या कहते हैं।

उत्तराध्ययन मे –

*दाना ल श्याग्रा का ययाध त्रित्रण उत्तराध्ययन सूत्र के ३४व अध्ययन म किया गया है चौथी गाथा स लेकर वीमवा गाथा तक द्रव्य लेश्या का विस्तार किया गया है। वड ही रोचक और सुदर ढग स हर एक गाथा मे हर लेश्या के वण रस, गध और स्पश का चित्ताकपक वणन किया है।

आग २२वीं गाथा से लेकर ३२वी गाथा तक वणन भाव लेश्या का है।

द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या का परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है। जम २ भाव लश्या का परिणमन होता है वम २ द्रव्य लेश्या का भा परिणमन होता रहता है। इस बात का और स्पष्ट करने क लिये उदाहरण दिया जाता है।

यह विज्ञान का मादकारी युग है, नय नय आविष्कार आप के नयन निहार रहे हैं। बिजली का वल्व (Bull) पखा Fan हीटर H ater एयर कडीशण्ड रूम Air Conditioned Room आदि आज के युग के सुखमय सुलभ साधन है य सब 'द्रव्य' है। जिस विद्युत शक्ति स सचालित होने है वह भाव है।

बिना द्रव्य (वल्व आदि) के बिजली (भाव) कुछ नही कर सकती। ठीक इसी प्रकार भाव लेश्या के बिना द्रव्य लेश्या निष्क्रिय है और बिना द्रव्य लश्या के भाव लश्या अकिंचित्कर हैं।

* देखिय उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३४ वा

एक लेश्या तीन अवस्थाओं में—

आयुर्बंध के काल में प्रवहवती लश्या प्राण विसर्जन के समय सम्मुख आती है और अनागत जन्म की अपर्याप्ति काल भी उसी लश्या में ही व्यतीत होता है।

इन तीनों अवस्थाओं में एक ही लश्या रहती है देखिये एक पुरुष है। कल्पना कीजिये कि वह पापी है। आठों याम पाप में रत रहता है। उसने आयु के तीसरे भाग में अपने भावी जन्म की आयु का बन्धन बांधा किन्तु कृष्ण लेश्या के उदय और उसके प्रबल प्रभाव में। उपरान्त उसके जीवन की पगडण्डी पर वह गिरता-सम्भलता चलता रहता है। उसके मन में लेश्या भी बदलती रहती है किन्तु जब अन्तिम यात्रा का समय आयेगा तब उसके भाव कृष्ण लेश्या से अनुरंजित हो जाएंगे। वह अन्तिम लश्या उसको खींच कर तदनुसार गति में लेजाएगी और वहां भी तब तक कृष्ण लेश्या में ही रहना है जब तक वह अपने भवयोग्य पर्याप्तियां पूरी नहीं कर लेता है।

स्मरण रहे कि तीनों अवस्थाओं में रहने वाली लेश्या की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है इस से अधिक नहीं क्योंकि आयु का बन्ध अन्तर्मुहूर्त्त में होता है मरने से अन्तर्मुहूर्त्त पहले लेश्या का उदय होता है और अन्तर्मुहूर्त्त में ही जीव अपर्याप्त से पर्याप्त हो जाता है।

चारों गतियों की यही स्थिति है। किन्तु —

एक अन्तर -

देव और नारक में आजीवन एक ही द्रव्य लेश्या बनी रहती है। हां भाव लेश्या अवश्य बदलती रहती है किन्तु वह भी अव्यक्त रूप में। प्रकट रूप में तो भाव लेश्या भी वह ही रहती है जिस का सम्बन्ध द्रव्य लेश्या के साथ होता है। किन्तु मनुष्य और तिर्यञ्च एक अन्तर्मुहूर्त के अल्प से समय में छहों लेश्याओं को स्पर्श कर सकता है और छह अन्तर्मुहूर्तों में भी। आप पूछ सकते हैं कि यहां क्रिया के प्रसंग में यह लेश्या का उपक्रम क्यों? किन्तु उत्तर इस का सरल है क्योंकि क्रिया के साथ लेश्या का सम्बन्ध है। बिना जीव क्रिया के लेश्याओं का परिवर्तन और स्पर्श नहीं हो सकता है। जीव और अजीव क्रियाओं से ही लेश्याओं का उदय और अस्त होना। इस लिये लेश्या का प्रसंग उपस्थित हुआ है। जो स्थलानुसार सुसंगत है।

निमित्त और नैमित्तक

निमित्त—

जो जिस वस्तु को और स और हा रना रखता है उसे निमित्त कहते हैं।

नमित्तक—

जा जिस स किसी नय ही रूप म ढल जाता है उसे नैमित्तक कहा जाता ह।

सम्बन्ध—

जो जिस के बिना नहा होसकता और उसके होने पर ही हो सकता है उसे निमित्त नमितक सम्बन्ध कहते हैं।

उदाहरण—

देखिये स्फटिक मणि स्वय स्वच्छ है निर्मल है उस में दूसरा काइ रग नहो। जब वह लाल नीरा या काले द्रव्या स जडतो है तो उस म तदनुरूप रग आ जाता है। उस का उस म परिणमन हो जाता है।

घी अग्नि स पिघल जाता है। अग्नि निमित्त है और पिघला हुआ घृत नमित्तक है। स्फटिक मणि (मे लालिमा) नैमित्तक है और लाल आदि द्रव्य निमित्त है।

आत्मा में राग द्वेष आदि पर्यायें देखी जाती हैं किन्तु वे आत्मा का स्वभाव नहीं। दूसरी ओर वे आत्मा से भिन्न जड़ पदार्थ का भी गुण नहीं तो फिर ये क्या बला है! इन का जन्म हुआ तो कैसे? इन की उत्पत्ति का निमित्त क्या? और कहां है? इस के मूल की खोज आवश्यक है।

हम शास्त्रकारों ने बतलाया है कि आत्मा स्वभाव से शुद्ध है! वह स्वयं ही राग द्वेष से अनुरंजित तो नहीं हो जाता! किन्तु मोह, अज्ञान और मिथ्यात्व के निमित्त से राग, द्वेष रूप परिणमन होता है! सूर्यकान्त मणि अपने आप अग्नि रूप नहीं हो जाती है अपितु उस में सूर्य की किरण निमित्त हैं। जिस के सम्पर्क में आकर उस में परिणमन होता है! एवं जीव के परिणाम का निमित्त पा कर पुद्गल द्रव्य कर्म रूप अवस्था धारण कर लेता है। कर्म—उदय का निमित्त मिलने से जीव भी तद्रूप धार लेता है यही निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध कहलाता है। इस पर एक उदाहरण लीजिये —

हल्दी और चूना आप के सामने हैं हल्दी की वर्तमान पर्याय पीली है और चूना श्वेत पर्याय का स्वामी है दोनों को यदि मिला दिया जाय तो वे लाल रंग के शिकार हो जायेंगे। यह लालिमा नैमित्तिक है और दोनों का संयोग निमित्त है। यह है निमित्त—नैमित्तक सम्बन्ध, जिस को 'जन्य—जनक' भाव भी कहते हैं। अब प्रश्न हो सकता है कि आत्मा और द्रव्य—कर्म में निमित्त और नैमित्तक कौन? आत्मा या कर्म? इस का समाधान सरल है कि दोनों ही एक समय में निमित्त भी है और नैमित्तक भी!

यदि निमित्त है कर्मोदय, तो तद्रूप आत्म भाव का हो

जाना नमित्तव है। वही आत्मा का भाव निमित्त है और कामण वगणा का कम—अवस्था म आ जाना नमित्त है। ये दोना भाव एक ही समय म होत है फिर भी कारण—काय भेद अलग अलग हैं।

कर्मोदय कारण है और तदरूप आत्मा के गुण की अवस्था का हो जाना काय है।

जितन अश म घातिक कर्मो का उदय होता है उतन अश मे आत्मा क गुण का नियमन (अवश्यमेव) घात होता है।

उदीर्णा—

जो कम सत्ता म तो है कि तु उदय भाव को अभी तक अप्राप्त है, एसे कम का जिस आत्म भाव स उदयावली म लाया जाता है उस भाव का नाम उदीर्णा है वास्तव मे उदीर्णा मे आत्मा के परिणाम तो है कारण और कर्मो का उदय काल मे प्रवेश करना है काय। यही कारण—काय भाव है।

औदयिक और उदीर्णा भाव मे अतर —

औदयिक भाव समय २ म होता है और ज्ञान की उपयोग और लब्धि, दोनो अवस्थाओ म होता है। उदीर्णा भाव असख्यात समय मे होता है और ज्ञान की उपयोग अवस्था मे ही इस का अस्तित्व पाया जाता है लब्धि रूप म नही। यह एक सिद्धा त है। इस विषय म एक बात और स्मरण रखनी चाहिये कि जहा तो औदयिक भाव का शासन होगा वहा उदीर्णा भाव का ? रह भी सकता है और नही भी

अर्थात वहा तो रहगी भजना और जहा उदीर्णा भाव है वहा औदयिक भाव अवश्य होगा अर्थात् नियम से होगा।

जसे कि विग्रह गति अपर्याप्ति मूर्छित तथा निद्रा अवस्था मे उदीर्णा भाव तो नही है किन्तु औदयिक भाव का उद्रेक अवश्य होता है। क्योकि औदयिक भाव म रहती है कम की प्रधानता। कम की शक्ति स ही सम्पूर्ण विभिन्न अवस्थाओ का चक्र चलता रहता है। किन्तु उदीर्णा म कम शक्ति का कोई हस्तक्षेप नही होता उस म आत्मा और उस क उपयोग का ही अधिक आवश्यकता पडती है।

यह एक अटल और सत्य सिद्धात है कि अशुभ लेश्या से उपयोग भी अशुभ होता है। और शुभ स अशुभ शुभ और शुद्ध य तीनो प्रकार का उपयोग होता है।

यदि उपयोग अशुभ होगा तो याद रखिये योग भी अशुभ ही होगा। यदि उपयोग शुभ होगा तो योग की शुभता म कोई सदेह नही। उपयोग यदि होगा शुद्ध तो योग या तो शुभ रहेगा या होगा अयोग किन्तु भूलिये नही कि योग कभी शुद्ध नही हो सकता।

अब एक प्रश्न उठ सकता है कि योग यदि कभी शुद्ध नही होता तो फिर कर्मो की निर्जरा अर्थात कर्मक्षय कैसे होगा? और कम नाश क बिना मुक्ति कसे हो सकती है?

इस प्रश्न का समाधान यू है कि शुभ योग से तो अशुभ कम—बध रुक जाता है। उस और यदि उपयोग का शुद्धि करण हो जाय तो शुभ योग से उपार्जित कर्मो का स्थिति घात

श्रौर रस घात हो जाने से स्थिति ह्रस्व श्रौर रस मन्द हो जाता है उस समय शुभ प्रकृतियाँ म म ऐसी कोई प्रकृति नहीं बंधती जो घातिक कर्मों का पुष्टि प्रदान करे श्रौर न्न की स्थिति का दीर्घत्व का उपहार दे श्रौर रसत्व का तीव्रता प्राप्त कर।

पहले अशुभ प्रकृतियाँ को क्षय करता है फिर शुभ प्रकृतियों का भी क्षय करना प्रारम्भ कर देता है। सत्ता म पड़ी हुई प्रकृतिएं जो उदय मे आने के अयोग्य होती हैं उन्ह अयोग से क्षय किया जाता है।

मिथ्यात्व अव्रत कषाय प्रमाद श्रौर योग म प्रवृति करते हुए जो कर्मों का बन्ध होता है उसे क्रिया कहत है। क्रियाए पच्चीस प्रकार का होती हैं जिन का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। ये ही कर्म बन्ध की जनक क्रियाए हैं। इसी लिये कहा गया कि कर्म—बन्ध की कारण चेष्टा को क्रिया कहते है।

द्रव्य क्रिया –

जब आत्मा मे समुद्घात होता है। जस वेदनीय कषाय मारणान्तिक वैक्रिय तजस, आहारिक श्रौर केवली समुद्घात का उल्लेख शास्त्र कारा न किया। इन क निमित्त से आत्मा के प्रदेशो मे एक प्रकार की हलचल—परिस्पन्दन होन लगता है अतिरिक्त इस के योग श्रौर लेश्या आदि प्रवृति करते हुए आत्म प्रदेशो म जो उथल पुथल हो जाती है उसे भी द्रव्य क्रिया कहते है।

भाव क्रिया –

सम्यक्त्व प्राप्त करते हुए आत्म ध्यान में तरते हुए अनुप्रेक्षा के क्षणों में ज्ञान दर्शन के निर्मल महाकाश में उड़ान भरते हुए और संयम तप आदि के महामार्ग पर डग भरते हुए अन्तश्चेतना में जिस क्रिया का स्फुरण होता है उसे भाव क्रिया कहते हैं । यह है द्रव्य और भाव क्रिया का स्वरूप ।

★

क्रिया बनाम ज्ञान निरपेक्ष चारित्र

हम अपने पिछले दो प्रकरणो मे क्रिया के दो रूपो का और उन की भिन्न २ परिभाषाओ का दिग्दर्शन कराते आए हैं। पहले परिच्छेद मे यह स्पष्ट किया गया है कि सम्यग्वाद को क्रिया कहते हैं और दूसरे मे बतलाया गया है कि परिस्पन्दन का नाम भी क्रिया है इस का सविस्तार निरूपण करने के लिये लेखनी ने कुछ थोडा बहुत प्रयास किया है। अब इस तीसरे प्रकरण में 'क्रिया' के तीसरे रूप का निरूपण करने का प्रयत्न किया जाता है। स्पष्ट किया जाएगा कि क्रिया की तृतीय परिभाषा क्या है?।

कौन क्रियावादी है? इस प्रश्न के उत्तर म आचार्य की वाणी मुखरित हो उठी कि —

> क्रियैव परलोक साधनायालमित्येव
> वदितु शील यस्य स क्रियावादी

अर्थात चारित्र ही परलोक साधन मे पर्याप्त है यह कहना जिस का स्वभाव है उसे हम कहते है 'क्रियावादी'।

यहा क्रिया शब्द शुष्क चारित्र का बोधक है। क्योकि क्रिया का अर्थ चारित्र भी होता है।

यहा चारित्र से अभिप्राय सम्यक ज्ञान दर्शन निरपेक्ष चारित्र स है। अर्थात जो यह समझता है कि जीवन मे सम्यक् ज्ञानार्जन और सच्चे दर्शन की कोई आवश्यकता नही! सिर्फ ज्ञान और दर्शन से शून्य शुष्क चारित्र से ही कल्याण हो जाता

ऐसा व्यक्ति ज्ञान और दर्शन की निरुपयोगिता सिद्ध करता है और एक मात्र चारित्र को प्रमुख समझ कर उसी मे अपना श्रेय देखता है ? उसे भी क्रिया वादी कहते हैं, किन्तु है वह मिथ्या दृष्टि ।

क्रियावादी का यह दृढ विश्वास होता है कि आत्म कल्याण के लिए एकमात्र चारित्र ही चाहिये। ज्ञान और दर्शन मे क्या ? वह हो चाहे न हो। आत्म शुद्धि मे चारित्र ही उपयोगी है। ज्ञान और दर्शन तो निरा भार रूप है । क्रियावादियो की यह धारणा अटल है कि यदि चारित्र का अमर धन अपने जीवन कोष मे है तो ज्ञान और दर्शन की कोई आवश्यकता नही और यदि चारित्र से रीता जीवनघट है तो ज्ञान और दर्शन के विकट जाल से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? कोई नही। इस पर वह क्रियावादी अपने पक्ष को पुष्टि मे उदाहरण देते है। कोई डाक्टर या वैद्य किसी रोगी को दवाई की गोली चूर्ण या मिकचर बना कर देता है। रोगी को क्या पता कि इस दवाई मे क्या मिलाया गया है। इस औषध मे क्या विशेषता है ? कैसे तैयार की जाती है यह ? तात्पर्य कि रोगी को उस औषधी के विषय मे कोई ज्ञान नही होता। किन्तु फिर भी देखा जाता है कि दवाई अपना असर कर जाती है रोग दूर हो जाता है और रोगी शय्या से उठ बैठता है । विपरीत इस के यदि कोई रोगी भले ही वह स्वय वैद्य या डाक्टर हो जो दवाइयो के नाम गुण स्वभाव और प्रयोग के विधि विधानो का पूरा जानकार है किन्तु रोगावस्था में उन का ग्रहण नही करता तो उस का रोग नहीं जा सकता इसी प्रकार आगमो शास्त्रो के ज्ञान प्राप्त कर लेने से

से कोई छूट नही जाता।

ज्ञान और दर्शन की निरूपयोगिता सिद्ध करने के लिये क्रियावादी मिथ्या दृष्टि युक्तियां और आगम के प्रमाण उपस्थित करते हुए अपना शुद्ध सम्यक् ज्ञान दर्शन निरपेक्ष चारित्र की उपयोगिता सिद्ध करने का विफल प्रयास करता है? जैसे कि —

कोई व्यक्ति जातिस्मरण अवधि आदि ज्ञान प्राप्त करके कर्म के सुतीक्षण अमद्य बाणो के विकट प्रहारो से बच नहीं सकता। भगवान महावीर ने प्रज्ञापना सूत्र मे फरमाया है कि ससार चक्र मे ऐसे भी अनन्त जीव घूम रहे हैं जिन्हो ने किसी जन्म म १४ पूर्वो का पूर्ण अध्ययन किया। उन म निष्णात बन कर जिन्हो ने अपनी कीर्ति कौमुदी का चतुर्मुखी प्रसार किया। कई प्राणी ऐसे भी संसार भ्रमण म फस हुए हैं जिन्हो ने आहारिक आदि विचित्र और अदभुत लब्धियों के उच्च शिखरों पर आरोहण किया। चार ज्ञानो के जो धरता कहलाते थे। क्या भला? उत्तर स्पष्ट है कि उन्हो ने निरतिचार चारित्र का पूर्ण रूपेण परिपालन नही किया। जिन २ जीवो ने सम्यक् चारित्र का आस्वादन कर लिया वे फिर सात या आठ बार से अधिक ससार की परिक्रमा नही करते। वे अवश्य ही मोक्ष मन्दिर म प्रवेश कर जाते हैं। यह एक नियम है।

दशवकालिक सूत्र म भगवान फरमाते है। कि—

धम्मो मगलमुक्किट्ठ,
अहिंसा सजमो तवो।

देवा वि त नममति
जस्स धम्मे सया मणो ॥
अ०१ गा०१ ।

जो पुरुष अहिंसा सयम और तप की सच्ची और सदा आराधना करता रहता है उस के चरण सरोजों पर देव वृन्द भी अपना मस्तक निमाते हैं।

इस गाथा म चारित्र का स्वरूप भी दर्शा दिया गया है विना चारित्र के ज्ञान और दर्शन तो अजागलस्तन की भान्ति सर्वथा निरर्थक है। आगमों में स्थान २ पर बतलाया गया कि चारित्र के बिना जीवन का कल्याण नहीं होता जसे कि —

सुहसायगस्स समणस्स
सायाउलगस्स निगामसाइस्स ।
उच्छोलणा पहोयिस्स
दुल्लहा सुगइ तारिसगस्स ॥

अर्थात सुख में आसक्त रहने वाले सुख के लिये व्याकुल रहने वाले अत्यन्त सोने वाले श्रृगार के लिये हाथ मुह धोने वाले साधु को सुगति मिलना दुर्लभ है।

सू० द० अ० ४ गा० २६ ।

तवो गुण पहाणस्स,
उज्जुमइ खंति सजमरयस्स ।
परीसहे जिणतस्स,
सुलहा सुगई तारिसगस्स

तप रूप गुणों से प्रधान सरल

सयम म रत परीषहा को जीतने वाले साधु का सुगति मिलनी सुलभ है ।

सूत्र० दश० अ० ४ गा०२७ ।

और देखिय -

पच्छा वि ते पयाया,
खिप्प गच्छन्ति अमर भवणाइ ।
जेसिं पियो तवा ग्जमो य
खति य वभचेर च ॥

सू०दश०अ० ४ गा०२८ ।

जिन को तप और संयम क्षमा ब्रह्मचय प्रिय हैं एसे साधन यदि अपनी पिछली उमर मे सयम का पथ स्वीकार करें तो व शीघ्र ही स्वग या माक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ।

इन गाथाओ म स्पष्ट कर दिया गया है कि थोड समय का भी विमल चारित्र जन्म २ के कलिमला को धो डालता है और आत्मा को मोक्ष का अधिकारी बना देता है जब कि ज्ञान और दशन चाहे जितना भी विशाल हो जीव को अक्षय सुख धाम मे नही ले सकते। वस्तुत ज्ञान और दर्शन स न सुगति मिलती है न ता दुर्गति। बल्कि यह ता मनुष्य क चारित्र का फल है। जीवन म क्रिया ही सर्वेसर्वा है, ज्ञान दशन की आराधना करना तो केवल कालक्षप करना ही है । इन से कुछ प्रयाजन सिद्ध हान का नही ।

कई अनेक भाषाओं क धुरधर विद्वान देखे जाते हैं जिन के कण्ठ और जिह्वा म सरस्वती का निवास है ? किन्तु

व दुव्यसना से निवार बने हुए है । वह २ आंगल भापा-भापा आचरण स खाला है। मन ही वे किसन ही विद्या मे पारगत समझ जाते हा । यदि व 'निगघा इव विमुक्त' हा तो रौरव नरक का द्वार उन की प्रतीक्षा म सदा खुला रहता है ।

इस विषय मे भगवान महावीर ने फरमाया भी है जसे कि—

> ण चित्ता तायए भासा
> कुमो विज्जाणुसासण ।
> विसण्णा पाव कम्महि
> वाला पडिय माणिणो ॥

और भी →

> चाराजिण नगिणिण,
> जडी, सघाडि मु डिण ।
> एयाणि वि न तायति
> दुस्सीलस परियागय ॥

अर्थात् चित्र विचित्र प्रकार की भापाए पापा मे आसक्त व्यक्ति की रक्षा नहा कर सकती फिर तान्त्रिक कला कौशल की तो बात ही क्या है।

छाल पहनने वाले चम धारण करने वाले जटा धारी चिथड पहनन वाले और सिर मु डाने वाले दुराचारी पुरुष की ससार म कोई भी रक्षा नही कर सकता । केवल चारित्र यानी सम्यक क्रिया ही जीवन की सच्चा सहचरी है । जा

सयम म रत परीपहा का जीतने वाले साधु को सुगति मिलनी सुलभ है ।

सूत्र० दश० अ० ४ गा०२७।

और देखिय -

पच्छा वि ते पयाया
खिप्प गच्छ्न्ति अमर भवणाइ ।
जेसि पियो तवो ग्जमो य,
खति य बभचेर च ॥

मू०द०अ० ४ गा०२८ ।

जिन को तप और सयम क्षमा ब्रह्मचय प्रिय हैं ऐसे साधन यदि अपनी पिछली उमर में सयम का पथ स्वीकार करें तो व शीघ्र ही स्वग या मोक्ष का प्राप्त कर लेते हैं ।

इन गाथाओ में स्पष्ट कर दिया गया है कि थोडे समय का भी विमल चारित्र जन्म २ के कलिमलो का धो डालता है और आत्मा को मोक्ष का अधिकारी बना देता है जब कि ज्ञान और दशन चाहे कितना भी विशाल हो जीव को अक्षय सुख धाम म नही ले सकते। वस्तुत ज्ञान और दर्शन से न सुगति मिलती है न तो दुर्गति। बल्कि यह तो मनुष्य के चारित्र का फल है। जीवन म क्रिया ही सर्वेसर्वा है, ज्ञान दशन की आराधना करना तो केवल कालक्षेप करना ही है। इन से कुछ प्रयोजन सिद्ध होने का नही।

कई अनेक भाषाओं के धुरधर विद्वान देखे जाते हैं जिन के कण्ठ और जिह्वा म सरस्वती का निवास है ? किन्तु

वे दुव्यसनों के शिकार बन हुए है । बड़े २ आंगल भाषा-भाषी आचरण स खाला है । भले ही वे कितन ही विद्या मे पारगत समझ जाते हो । यदि व 'निगधा इव विमुक्ता' हो तो रौरव नरक का द्वार उन की प्रतीक्षा मे सदा खुला रहता है ।

इस विषय मे भगवान महावीर ने फरमाया भी है जसे कि—

> ण चित्ता तायए भासा,
> कुओ विज्जाणुसासण ।
> विसण्णा पाव कम्मेहि
> बाला पडिय माणिणो ॥

और भी →

> चाराजिण नगिणिण
> जडी, सघाडि मुडिण ।
> एयाणि वि न ताइति,
> दुरस्सीसल परियागय ॥

अर्थात् चित्र विचित्र प्रकार की भाषाए पापो म आसक्त व्यक्ति की रक्षा नहा कर सकती फिर तान्त्रिक कला कौशल की तो बात ही क्या है ।

छाल पहनने वाले चम धारण करने वाले जटा धारी चिथड पहनन वाले और सिर मुडाने वाले दुराचारी पुरुष का ससार म कोई भी रक्षा नही कर सकता । केवल चारित्र यानी सम्यक् क्रिया ही जीवन की सच्ची सहचरी है । जो

सयम मे रत परीपहो को जीतने वाले साधु को सुगति मिलनी सुलभ है ।

सूत्र० दश० अ० ४ गा०२७ ।

और देखिये -

पच्छा वि ते पयाया
खिप्प गच्छन्ति अमर भवणाइ ।
जेसिं पिया तवो संजमो य,
खंति य बभचेर च ॥

सू०दश०अ० ४ गा०२८ ।

जिन को तप और सयम क्षमा ब्रह्मचर्य प्रिय हैं ऐसे साधन यदि अपनी पिछली उमर मे सयम का पथ स्वीकार करें तो वे शीघ्र ही स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त कर लेते है ।

इन गाथाओ मे स्पष्ट कर दिया गया है कि थोड़े समय का भी विमल चारित्र जन्म २ के कलिमलो को धो डालता है और आत्मा को मोक्ष का अधिकारी बना देता है जब कि ज्ञान और दर्शन चाहे कितना भी विशाल हो जीव को अक्षय सुख धाम में नही ले सकते। वस्तुत ज्ञान और दर्शन से न सुगति मिलती है न तो दुर्गति। बल्कि यह तो मनुष्य के चारित्र का फल है। जीवन मे क्रिया ही सर्वेसर्वा है, ज्ञान दर्शन की आराधना करना तो केवल कालक्षेप करना ही है । इन से कुछ प्रयोजन सिद्ध होने का नहीं ।

कई अनेक भाषाओं के धुरधर विद्वान देखे जाते हैं जिन के कण्ठ और जिह्वा मे सरस्वती का निवास है ? किन्तु

वे दुव्यसना के शिकार बन हुए है। यह २ आंगल भाषा-भाषी आचरण में खाता है। भले ही वे कितने ही विद्या में पारगत समझे जाते हो। यदि वे निगधी द्व विगुरा' हो तो रौरव नरक का द्वार उन की प्रतीक्षा में सदा खुला रहता है।

इस विषय में भगवान महावीर ने फरमाया भी है जैसे कि—

> ण चित्ता तायए भाशा
> कुओ विज्जाणुसासण।
> विसण्णा पाव कम्मेहिं
> बाला पडिय माणिणो॥

और भी →

> चीराजिण नगिणिण
> जडी, सघाडि मुडिण।
> एयाणि वि न तायति,
> दुस्सीलत परियागय॥

अर्थात् चित्र विचित्र प्रकार की भाषाए पापो में आसक्त व्यक्ति की रक्षा नहीं कर सकती फिर तात्रिक कला कौशल का तो बात ही क्या है।

छाल पहनने वाले चर्म धारण करने वाले जटा धारी चिथड़े पहनने वाले और सिर मुडाने वाले दुराचारी पुरुष की ससार में कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। केवल चारित्र यानी सम्यक् क्रिया ही जीवन की सच्ची सहचरी है। जो

ऐहिक और पारलौकिक कष्टों से मनुष्य की कवच की भान्ति सरक्षण करती हैं।

बहुत से अपठित और अशिक्षित व्यक्ति भी चारित्र की नौका से ससार समुद्र को पार कर जाते हैं। उन के जीवन पुष्प म चारित्र का सौरभ रहता है और उस से व समूचे विश्व को भी सुरभित कर देते है। और अन्त म वे चारित्र के सोपान से मोक्ष मन्दिर में प्रवेश करते हैं। अत ज्ञान-दर्शन के अधिक झंझट मे न पड कर सम्यक क्रिया की शरण मे जाना चाहिये। क्यो कि क्रिया ही भवनाशिनी कही जाती है।

क्रिया वनाम सम्यक् चारित्र

इस प्रकार क्रियावादी यही मानता है कि केवल चारित्र ही मोक्ष का सोपान है। इसी से मनुष्य का जन्म-मरण कट जाता है? सच्चा ज्ञान और दर्शन के प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं। इस तरह की मान्यता को मानने वाला क्रियावादी भी मिथ्या दृष्टि है।

प्रस्तुत प्रकरण में अब हम आप के सामने क्रिया का चतुर्थ स्वरूप उपस्थित करेंगे। क्रिया के तीन रूप आप पीछे देख आए हैं। अब जरा इस का चौथा रूप भी निहारिये।

जो पथिक है आध्यात्मिक मार्ग का! आगे बढ़ना चाहता है मोक्ष की ओर, सुख और आनन्द की अन्तिम मंजिल पर वह ज्ञान दर्शन और चारित्र का सम्बल लेकर चलता है। क्योंकि वह मानता है कि इन तीनों साधना के सम्यक् समन्वय और ऐक्य से ही साधक अपने लक्ष्य को पा सकता है जिस का इस प्रकार की दृढ़ धारणा एवं मान्यता है उसे भी क्रियावादी कहते हैं।

जैन आगम में 'क्रिया का दूसरा नाम सम्यक् चारित्र भी है। भगवान महावीर ने 'क्रिया' का यथार्थ स्वरूप दर्शाते हुए फरमाया है।

दंसण नाण चरित्ते, तव विणए सच्च समिइ गुत्तिसु।
जो किरिया भाव रुई, सो खलु किरिया रुई नाम।

उत्त० अ० २८

दर्शन, ज्ञान और चरित्र तप विनय सत्य, समिति और गुप्तिया मे जो भाव रूचि है अथात उक्त क्रियाग्रा का सम्यक अनुष्ठान करते हैं। जिस ने सम्यक्त्व का प्राप्त किया है वह क्रिया रूचि सम्यक्त्व वाला कहा जाता है दूसर शब्दो मे उसे ही वस्तुत 'क्रियावादी' कहते हैं।

चारित्र क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि भेद-विज्ञान के द्वारा स्वरूप-रमण ही चारित्र है।

जो आठ प्रकार के कर्मो और अनेक दुगु णा म आत्मा को रिक्त कर द उस का नाम चारित्र है आत्मा के निर्विकार सुख और स्थिर परिणाम रा चारित्र कहते हैं।

क्रियावादी दो प्रकार के है —

१—मिथ्यादृष्टि

२—सम्यक दृष्टि

सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दशन से रहित क्रिया का परिपालन करन वाले मिथ्या दृष्टि क्रियावादी कहे जात है। अतिरिक्त इस के जो सम्यग्ज्ञान दशन पूवक क्रिया के समथक हैं वे सम्यग्दृष्टि क्रियावादी है। वास्तव मे जन धम इसी क्रिया वाद का समथक है, वह शुष्क क्रिया वाद से अनत योजन दूर रहता है।

भगवान महावीर फरमाते हैं —

अत्ताण जा जाणइ जो य लोग,
गइ च जो जाणइ आगइं च।
जा सासय जाण असासय च

जाइ च मरण च जणोववाय ॥
अहा नि सत्ताण विउट्टण च
जो आसव जाणइ सवर च ।
दुक्ख च जो जाणइ निज्जर च,
सो भासिउ मरिहइ किरियावाय ॥
सू० सूय० श्र० १२ गा० २०—२१ ।

अर्थात जो ज्ञानी पुरुष आत्मा और परमात्मा को जानता है लोकालोक को मानता है जीवों की गति आगति को जानता है ससार और मोक्ष के स्वरूप के ज्ञान का धारक जन्म-मरण उपपात च्यवन आश्रव-सवर, बन्ध-मोक्ष शाश्वत आशाश्वत दुख सुख पुण्य-पाप और निर्जरा आदि को भली भान्ति जानने वाला महामानव हो क्रियावाद का वास्तविक स्वरूप बता सकता है।

इस पाठ से यही सिद्ध होता है कि सभी ज्ञानात्मा और चारित्रात्मा क्रियावादी हैं । इस दृष्टि से सम्यग्दृष्टि को भी क्रियावादी कह सकते हैं।

जैन धर्म केवल ज्ञानमात्र या केवल चारित्र मात्र से मुक्ति नही मानता । वह पक्षी की दोनो पाखों की तरह मोक्ष गगन मे उडारी मारने के लिये आवश्यक समझता है क्यों कि कहा है।

ज्ञान क्रियाभ्या मोक्ष

अर्थात ज्ञान और क्रिया से मोक्ष होता है।

इसी ज्ञान और चारित्र का उल्लेख करते हुए भगवान महावीर ने फरमाया है —

> एव खलु मए चत्तारि पुरिस जाया प० त०
> सील सपन्ने नाम एगे नो सुय सपन्ने
> सुय सपन्ने नाम एगे नो सील सपन्ने
> एगे सील सपन्न वि सुय सपन्ने वि
> एगे नो सील सपन्ने नो सुय सपन्न ॥
>
> ठाणाग सू० गणा ४

हे गौतम ! चार प्रकार के पुरुष होते हैं एक पुरुष शील सपन्न तो है किन्तु श्रुत सपन्न नहीं ! एक ऐसा पुरुष है जो श्रुत सपन्न तो है किन्तु शील युक्त नहीं ! एक शील और श्रुत दोनों से युक्त है और एक दोनों से ही रहित ।

स्मरण रहे यहा श्रुत से तात्पर्य है आगम ज्ञान, किन्तु वह भी सम्यक्त्व पूर्वक ! और शील यह सम्यक चारित्र के अर्थ को ले कर अवतरित हुआ है।

इन चार प्रकार के व्यक्तियों में से तीसरे प्रकार का व्यक्ति अत्युत्तम है। क्योंकि वह मोक्ष के साधन ज्ञान और क्रिया (चारित्र) दोनों से विभूषित होता है।

मिथ्यात्व पूर्वक चारित्र का प्रतिपालक भगवान के शासन का सदस्य नहीं बन सकता। सम्यक्त्व पूर्वक चारित्र का आराधक ही धर्म सेना का वीर सेनानी है।

सम्यक्त्व आंखो की दृष्टि के समान है और आगम ज्ञान प्रकाश पुञ्ज के सदृश है जैसे नजर बिल्कुल ठीक होने पर भी आलोक के बिना किसी भी वस्तु को स्पष्ट नहीं देखा जा सकता ठीक इसी प्रकार सम्यक्त्व होने पर भी यदि आगम ज्ञान नहीं है तो भी पदार्थों का वास्तविक रूप न देखा जाता जाता अतः सम्यक्त्व के साथ २ आगम ज्ञान भी आवश्यक है। वह प्रकाश की तरह पदार्थों का प्रकाशक है। अच्छा यह बात तो हो गई। अब रही सम्यक्त्व की महत्ता की बात! देखिये एक नेत्रवान पुरुष है जब भगवान–भास्कर की ज्योतिर्मय किरणों में समस्त पदार्थों को ठीक देख और जान सकता है। किन्तु एक नयनहीन दिवाकर की चमचमाती हुई रश्मियों में भी कुछ देख नहीं सकता उसके लिए भला बाहर का प्रकाश किस काम का जिस के भीतर प्रकाश का रेखा तक नहीं। स्मरण रहे कि इसी प्रकार सम्यक्त्वी आगम-ज्ञान की मशाल ले कर जब जीवन पथ पर चलता है तो धारा पार के विस्तृत संसार और उस के जड़ चेतन पदार्थों को देखता और जानता जाता है। जब कि मिथ्यात्वी आगम ज्ञान का हाथ में महादीप ले कर भी अन्धों की तरह चलता है ठोकरें खाता हुआ! भला अन्धे के हाथ में प्रदीप किस काम का?।

आगम ज्ञान की उपयोगिता

१–आगम ज्ञान आस्रव और बन्ध का निवर्तक और संवर और निर्जरा का प्रवर्तक है।

२–सम्यग्दृष्टि का सच्चा पथ प्रदर्शक है।

३–हित–अहित मत–अमत पतन–उत्थान

अपाय, बन्ध—मोक्ष संसार—निर्वाण, हेय, हेयउपाय—उपादेय उपादेयउपाय आदि जटिल समस्याओं के लिये आगम ज्ञान एवं सफल—समाधान उपस्थित करना है। किन्तु इतना याद रहे कि ऐसा २ समस्याओं को सम्यग्दृष्टि ही सुलझा सकता है। मिथ्यादृष्टि नहीं। उस की समस्याएं तो सुलझने की अपेक्षा अधिक उलझती चली जाती है।

दोनों में अन्तर –

सम्यग्दृष्टि संवर और निर्जरा में निवास करता है। वह दैवी सम्पदा का स्वामी होता है। वह रहता है संलग्न आत्म तत्व की खोज में। वह देव दुर्लभ मानव शरीर को नश्वर मान कर आत्मिक सुख के लिये लालायित रहता है। अब देखिये चित्र का दूसरा पहलू एवं 'मिथ्यादृष्टि आश्रव और बन्ध में आसक्त रहता है सर्व ही। आसुरी सपदा उस की जीवन पूंजी होती है वह जड़ तत्व की खोज में जुटा रहता है। वह मनुष्य जन्म को भोग विलास का साधन समझता है और जीवन भर भौतिक सुखों के लिये प्रयत्न शील रहता है।

सम्यग्दर्शन का अधिकारी

सम्यग्दर्शन का अधिकारी केवल भव्य जीव ही है। उसी में सम्यक्त्व का आविर्भाव हो सकता है। अभव्य में नहीं क्या कि उस का मिथ्यात्व अनादि और अनन्त है। जैसे कि देखा जाता है कि तोता, मैना आदि प्राणी मनुष्य भाषा में बोलना सीख जाते हैं किन्तु कौआ चील आदि जन्तु वैसा सीख

नहीं सकने चाहे कितना भी प्रयत्न क्या ना किया जाये क्या कि उन म मनुष्य की तरह बालन की याग्यता है हो नही। ठाक इसी प्रकार भव्य म सम्यग्दशन प्राप्त करन की योग्यता ह किन्तु अभव्य म नहो।

सम्यक्त्व कब ?

यह जीव जन धम के अनुसार ससाराब्धि म अनादि काल से परिभ्रमण करता चला आ रहा है, भ्रमण करते २ जब इस का भ्रमण-काल अध पुदगल परावतन जितना रह जाता है उसे काल लब्धि कहा जाता है। और उस जीव को मार्गानुसारी या शुक्ल पक्षी कहा जाता है।

दशन म तो अध पुद्गल परावतन का समय एक बहुत वडा समय है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि स देखा जाये तो यह नाव जाव के अतीत परिभ्रमण-काल रूप समुद्र का एक बिन्दु है।

उपयु क्त समय यदि शप रहता हो ससार म परिभ्रमण करन का तो अनादि काल का सोया हुआ यह प्राणी जाग उठता है। इसी का नाम काल लब्धि है।

जब जीव का दशा ऊन अर्द्ध पुद्गल परावतन शेष रह जाता है तब किसी २ जीव को सम्यक्त्व का उपलब्धि हो जाया करती है कि तु इस म शत यह है कि जीव के सभी कर्मो की स्थिति कोटा कोटी सागरोपम स न्यून हो चाहिये। तब जा कर वही यथाप्रवति करण अपूव करण और निवृति करण के द्वारा सम्यक्त्व लाभ कर सकता । एक बात याद रहे कि कर्मो की स्थिति भले ही इस से कितनी भी कम हा

किया उसन ! और फिर भगवान केवली।

सातवा व्यक्ति कुमार अवस्था म सम्यग्दष्टि बनता है-युवावस्था मे सम्पूणतया निवति माग का पथिक बन जाता है, और जीवन के अन्तिम वर्षो मे कतत्य प्राप्त करता है।

आठवां पुरुष विलासी है। अपनी यौवनावस्था भोगा मे व्यतीत की फिर वे बूढी उमर म दीक्षा धारण करता है किन्तु जनेन्द्रा दीक्षा नही बल्कि क्रियावादी के एक सौ अस्सी मता मे से किसी एक मत म दाक्षित हा जाता है। वहा वह उच्च कोटी की करणी भा करता है। फलस्वरूप विभग ज्ञान से उद्दीप्त हा उठता है,। वप उस का वही रहता है। नैसर्गिक सम्यक्त्व उसे प्राप्त हो जाता है फिर उस की आत्मा म भाव सयम का उद्भव होता है फिर कर्मो को क्षय करके केवली पद पाता है।

नौवा व्यक्ति बाल अवस्था म सम्यक्त्व प्राप्त करता है। जवान हा कर सयम का रस पीता है। आज जीवन के अन्तमुहूत्त म उस न कवल ज्ञान प्राप्त किया।

दसवा पुरुष जीवन भर मिथ्यात्व क चक्कर म पडा रहा किन्तु मरन स मुहूत्त पहले सम्यग्दशन, भाव चारित्र और केवल ज्ञान की प्राप्ति तीना महालाभ क्रमश प्राप्त हो जाते हैं। अथात चौथे गुण स्थान स पाचवा और ग्यारहवा छोड कर चौदह गुण स्थान तक एक मुहूत्त म पहुचा जा सकता है।

जिस का काल लब्धि' की प्राप्ति हो चुकी है वे उक्त

विकल्पों में से किसी एक विकल्प से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

यहां एक शंका हो सकती है वह यह है कि जब काल लब्धि से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। तो फिर पुरुषार्थ करने की क्या आवश्यकता है? इस का समाधान यह है कि कारण के बिना कार्य कभी मूर्तिमान नहीं होता। कारण से ही कार्य की उत्पत्ति हुआ करती है। कारण दो हैं —

१—निमित्त कारण।

२—उपादान कारण।

निमित्त कारण —

वह कारण है जो कार्य को उत्पन्न करके अलग हो जाता है। जैसे कि घट के निमित्त कारण हैं दण्ड और चक्र आदि जो घड़े का मूल रूप दे कर घड़े से पृथक हो जाया करते हैं।

उपादान कारण —

वह कारण है जो स्वयं ही कार्य रूप में परिणत हो जाता है। जैसे कि घड़े का उपादान कारण है मृत्तिका, क्योंकि आखिर मृत्तिका ही घड़े के रूप में हमारे सामने आती है।

किसी भी कार्य की निष्पत्ति में दोनों कारणों की अत्यन्त आवश्यकता है। इन के बिना कोई भी कार्य पूर्णता को पर नहीं पहुंचता।

किया उसने ! और फिर भगवान केवली।

सातवा व्यक्ति कुमार अवस्था म सम्यग्दृष्टि बनता है- युवावस्था मे सम्पूणतया निवृत्ति माग का पथिक बन जाता है, और जीवन के अंतिम वर्षो म कैवल्य प्राप्त करता है।

आठवा पुरुष विलासी है । अपनी यौवनावस्था भोगो म व्यतीत की फिर व बूढी उमर म दीक्षा धारण करता है कि तु जनेन्द्रा धीक्षा नही, बल्कि क्रियावादी के एक सौ अस्सी मता म से किसी एक मत मे दाक्षित हो जाता है। वहा वह उच्च कोटो की करणी भी करता ह । फलस्वरूप विभग नान से उद्दीप्त हो उठता है ,। वह उस का वहीं रहना है। नसगिक सम्यक्त्व उस प्राप्त हो जाता है फिर उस को आत्मा मे भाव सयम का उद्रेक होता है फिर कर्मो का क्षय करके केवली पद पाता है।

नौवा व्यक्ति बाल अवस्था म सम्यक्त्व प्राप्त करता है। जवान हो कर सयम का रस पीता है । आज जीवन के अन्तमुहूर्त म उस ने कवल नान प्राप्त किया।

दसवा पुरुष जीवन भर मिथ्यात्व के चक्कर म पडा रहा कि तु मरन स मुहूर्त पहले सम्यग्दशन, भाव चारित्र और कवल नान की प्राप्ति तीनो महालाभ क्रमश प्राप्त हो जात है। अर्थात चौथे गुण स्थान स पाचवा और ग्यारहवा छोड कर चौदव गुण स्थान तक एक महूर्त म पहुचा जा सकता है।

जिस को काल लब्धि की प्राप्ति हो चुकी है व उक्त

विकल्पों में से किसी एक विकल्प से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

यहां एक शंका हो सकती है वह यह है कि जब काल-लब्धि से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। तो फिर पुरुषार्थ करने की क्या आवश्यकता है? इस का समाधान यह है कि कारण के बिना कार्य कभी मूर्तिमान नहीं होता। कारण से ही कार्य की उत्पत्ति हुआ करती है। कारण दो हैं —

१—निमित्त कारण।

२—उपादान कारण।

निमित्त कारण —

वह कारण है जो कार्य को उत्पन्न करके अलग हो जाता है। जैसे कि घट के निमित्त कारण हैं दण्ड और चक्र आदि जो घड़े को मूर्त रूप देकर घड़े से पृथक हो जाया करते हैं।

उपादान कारण —

वह कारण है जो स्वयं ही कार्य रूप में परिणत हो जाता है। जैसे कि घड़े का उपादान कारण है मृत्तिका, क्योंकि आखिर मृत्तिका ही घड़े के रूप में हमारे सामने आती है।

किसी भी कार्य की निष्पत्ति में दोनों कारणों की अत्यन्त आवश्यकता है। इस के बिना कोई भी कार्य पूर्णता की चोटी पर नहीं पहुंचता।

द्रव्य क्षेत्र और काल य तीन निमित्त कारण के अन्तगत है और भाव उपादान कारण की परिधि मे आ जाता है। अत कवल्य-प्राप्ति रूप काय को उत्पत्ति म यह समुदाय चतुष्टय ही काय कारी होना है – जस कि –

द्रव्य —

तीसरे और चौथे आरक का ज म मनुष्य भव, वज्र ऋषभ नाराच सहनन ये तीनो द्र य कारण कह जाते है। इस के साथ ? पर्याप्ति सनी और सख्यात वष का अनपवतनीय आयुष्य भी होना चाहिय।

क्षेत्र
कम भूमिज

काल —

जिस की भव स्थिति पण हाने जा रही है।

भाव —

सम्यग्ज्ञान पूवक विशुद्ध परिणाम।

इन चारो क शुभ सम्मिलन से ही कवल ज्ञान की अक्षय निधि प्राप्त होती है।

देखिये एक कृषक है खेत को कर पहले ठीक करता है। फिर समय पर बिजाई करता है खाद डालता है, सिचाई भी करता जाता है। और सदव उस की सार सभाल भी दिल जान से करता है। इस प्रकार द्रव्य स, जल, खाद, और प्रकाश आदि साधन क्षत्र से उपजाऊ धरती, काल से, अनुकूल ऋतु

श्रौर भाव स, ग्रदग्ध वीज। य चारा मिल कर ही ग्रकुर का जन्म देते हैं।

एव गुण स्थानो पर पग २ बढत हुए जीव को ही यथा प्रवृतिकरण अपूवकरण और अनिवतिकरण करने पडते हैं। इन के सम्पादन स आत्मा धीरे धीरे विशुद्ध बनता जाता ह। क्षपक श्रेणि मे प्रवेश करना और शुक्ल ध्यान से भूषित होना ही आत्मा का सम्यक पुरुषाथ है। याद रहे जब तक आत्मा पुरुषाथ नही करता तब तक द्रव्य क्षेत्र और काल कुछ कर नही सकते। जब उपादान कारण तयार हो तभी निमित्त कायता क लिये सहयाग प्रदान कर सकता है। इस स सिद्ध हाता है कि काय की सफलता म दानो प्रकार के कारणा या द्रव्य क्षेत्र काल और भाव रूप चतुष्टय का साहचय होना चाहिय।

यह सब कुछ ठाक है किन्तु काल लब्धि के प्रसग पर एक शका आप क मस्तिष्क म उठ सकती है। वह यह ह कि आगमा म कई स्थाना पर यह वणन देखन मे आता है कि अमुक गाथा पति (सेठ) न सुपात्र दान दिया और उसन इस से ससार परित्त अर्थात सक्षिप्त कर लिया। अब प्रश्न यह है क्या काल लब्धि भी परिणाम विशेषा से घट जाया करती है? यदि नही तो ससार परित कर लिया। इस का क्या तात्पय हुआ।

देखिय इस का समाधान यू है —

परित्त दो प्रकार का होता है —

१—काय परित्त।

२—संसार परित्त।

काय परित्त—

प्रत्येक शरीरी को काय परित्त कहते हैं अथवा जिस काय में एक से न कर असंख्यात भव धारण कर सके उसे भी काय परित्त कहते हैं। जिस की संसार यात्रा अल्प सी रह गई है उस की काल लब्धि न तो परिणामों से घटती है न हो बढ़ती है वह तो नियत है। कैसे ? देखिये —

एक मनुष्य है। वह अपने जीवन की अनागत वर्षों को निकट लाने की उत्कट-उत्कण्ठा करता है। और निकटवर्ती वर्षों को दूरवर्ती करने की तीव्र इच्छा करता है किन्तु उस के चाहने मात्र से कुछ न्यूनाधिकता हो नहीं सकती। वह दूर या निकट हो नहीं सकता। वह तो नियत है। ठीक इसी तरह काल लब्धि भी न परिणामों से घटती है न बढ़ती है।

केवली समुद्घात की बात आप जानते ही हैं कि जब केवली भगवान के वेदनीय नाम और गोत्र इन की प्रकृति, स्थिति और अनुभाग और प्रदेश बंध यदि आयु कर्म से अधिक हो तो उन को आयुष्य कर्म के बराबर करने के लिये केवली समुद्घात होती है। इस से प्रतीत हुआ कि काल लब्धि घटती नहीं है। याद रहे एक छद्मस्थ साधक के घातिक कर्मों का रस और उन की स्थिति उतनी हो रह जाती है जितनी कि छद्मस्थता की अवधि होती है वास्तव में इसी को संसार परित्त कहते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो चारों प्रकार

से घातिक कर्मों के बंध का नाम ही संसार है।

संसार परित्त करने के पश्चात् भी कर्म बंध चलता ही रहता है हां इतनी बात अवश्य है कि उस के बाद इन कर्मों का तीव्र रस और तीव्र स्थिति नहीं उपार्जित होती। घातिक कर्मों का बंध उतना ही होता है जितना कि क्षपक श्रेणि में प्रवेश करने में बाधक न बने और ठीक समय पर क्षय करने में विलम्ब न होने पाये किसी कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है —

> गुम कर दे जो तदबीर को
> तदबीर उसे कहते हैं।
> तदबीर में आयद न हो,
> तदबीर उसे कहते हैं॥

यह है संसार परित्त का समुचित सुन्दर और सुलझी हुई सी परिभाषा —

हम आप को अपने पिछले प्रकरण में बता आए हैं कि सम्यग्ज्ञान पूर्वक चारित्र का पालन करने वाला 'क्रिया वादी' कहलाता है और इसी दृष्टि में रखते हुए चार प्रकार के पुरुषों का उल्लेख किया गया था अब हम उसी का विस्तृत विवेचन आगम ज्ञान के प्रकाश में करते हैं। शास्त्र में कहा है —

तत्थण जे से पढम पुरिस जाए

से ण पुरिस सीलव असुयव उवरए अविण्णाय-

धम्मे। एस ण गोयमा! मए पुरिसे देसाराहए।

जो पुरुष शीलाचारी है किन्तु श्रुत ज्ञान से

पाप से निवृत तो होता है किन्तु अपनी ही समझ से ! यह विशिष्ट श्रुत ज्ञान का अभाव होने से धर्म का ज्ञाता नहीं हो सकता। भगवान ने फरमाया — गौतम ! वह पुरुष मेरे शासन में देश आराधक कहा जाता है।

इस पाठ का सारांश यह है कि एक पुरुष चारित्र को अपने जीवन में ढालता है किन्तु अज्ञान के साथ ! क्या ? वह श्रुत सपन्न नहीं होता।

उवरए -

इस पद का अर्थ है स्वबुद्ध या पापात निवृत्त अर्थात जो बुद्धि से ही पाप से निवृत्त हो गया है। उसे उपरत कहते हैं।

अविण्णाय धम्म —

इस का भाव है न विशेषेण ज्ञाता धर्मो येन सोऽविज्ञात-धर्मा जिस ने धर्म को विशेष रूप से नहीं जाना उसे अविज्ञात धर्मा कहते हैं।

जिस ने श्रुत ज्ञान का अभ्यासामृत पान किये बिना ही अपनी बुद्धि से धर्म और अधर्म की परिभाषा घडली है और इच्छानुसार धर्म में प्रवृत्ति करता रहता है और पाप से निवृत्ति करता रहता है। अपनी बुद्धि से मनुष्य यथार्थ ज्ञानी नहीं बन सकता। श्रुत ज्ञान का विशिष्ट अध्ययन न करने से मनुष्य दोनों में से किसी एक का स्वरूप भी नहीं जान सकता। जिस व्यक्ति को खरे-खोटे की पहिचान ही नहीं। वह खरे का ग्रहण और खोटे का परित्याग कब करेगा जो

जो धम के मम को भली भांति नही जानता वह पाप से अपनी रक्षा नही कर सकता । केवल पाप से उपरत हो जान मात्र से श्रेय मनुष्य को नही मिल जाता। क्योंकि बिना ज्ञान के जाव पाप से मुक्त सचाल रूपण हो ही नही सकता, अत धम का आचरण और पाप का निराकरण करन के लिये धम और अधम क आतरिक और बाह्य अगो को अच्छी तरह जान लेना चाहिए शास्त्र म कहा है —

> जो जीवे वि न याणइ अजीवे वि न याणइ
> जीवा जीव अयाणतो कह सो नाहोइ सजम

जो पुरुष न तो जीव के स्वरूप को जानता है, और न ही अजीव के । जो दोनो के स्वरूप ज्ञान से वञ्चित है, भला वह सयम को गहनता को कैसे नापेगा । इस से यह ही सिद्ध होता है कि विशेष ज्ञान के अभाव से सयम के ममस्थल को जाना नहीं जा सकता जो साधक क्रिया की ओर अधिक ध्यान देता है किन्तु क्रिया क लिये उपयोगी विज्ञान को ओर उदासीन रहता है वह जीवन-अमरत्व को नही पा सकता ।
वह साधक देश आराधक है ।

जो आत्मा को न पढते है न ही सुनते हैं याद रहे उन्हे स्व आत्मा और पर आत्मा का ज्ञान नही होता जो स्वभाव-रत और विभाव मग्न आत्मा मे एकत्व के दर्शन करते है । जिस प्रकार एक शोधक कनक और कङ्कर को अलग २ कर देता है जिस प्रकार एक न्यारिया धूल के कणो मे से स्वण कण निकाल कर पृथक कर देता है ऐसी प्रकार भेद विज्ञान के द्वारा जो स्वभाव और विभाव,
जीव और अजीव को नही समझ सकता

ज्ञान से विभूषित दिव्य आत्मा को जो नही पहिचानता वह पुरुष विज्ञात धर्मा नही हो सकता। इसी दृष्टि कोण को लेकर वह देश आराधक माना गया आगमो मे।

अब जरा आगे देखिये दूसरे प्रकार के पुरुष के विषय मे-

तत्थ ण जे स दोच्चे पुरिस जाए
से ण पुरिसे असीलव, सुयव, अणुवरए
विण्णायधम्म एस ण गोयमा!
मए पुरिसे दसविराहए।

भगवान फरमाते हैं कि दूसरा पुरुष क्रियावान अर्थात शीलवान तो नहीं किन्तु ज्ञानवान है। धर्म के हृदय को भली भाति पहिचानता है। पाप के स्वरूप उस के कारण और फल को भी अच्छी तरह समझता है। किन्तु उस ने अपने जीवन को धर्म से सुवासित नही किया और पाप की दुर्गंध जीवन से निकाला नही। अत जो केवल विज्ञातधर्मा है चारित्र शील नही—गौतम! मैं उसे देश विराधक मानता हू।

दोनो मे अन्तर -

पहला पुरुष देश आराधक है। वह क्रिया शील है किन्तु ज्ञान से खाली है। दूसरा देश विराधक माना गया है। यह क्रिया शील तो नही किन्तु ज्ञान युक्त है। दोनो मे आराधना और विराधना कितनी न्यूनाधिक पाई जाती है। यह स्पष्ट किया जायेगा।

जो व्यक्ति नव तत्त्वों के वास्तविक स्वरूप को जानता है वह मिथ्यात्व की अंधेरी गलियों में भटक नहीं सकता क्योंकि वह मार्ग जानता है। वह विज्ञानधर्मा है।

उदाहरण लीजिए –

एक आदमी व्यापार करने में खूब प्रवीण है भाग्य भी उस का साथी है। साधन भी हाथ लगे हुए हैं किन्तु वह आलस्य में ही विलास के अथाह सागर में डूबा रहता है। अकर्मण्यता उस के आगे से हटती नहीं। परिणाम स्वरूप वह धन कुबेर नहीं बन सकता यदि वह उक्त दोषों को छोड़ दे तो उसे धनवान बनने में क्या देर है? कुछ भी नहीं क्योंकि वह व्यापार में कुशल है इसी प्रकार जो पुरुष धर्म-कला में प्रवीण है अर्थात् विज्ञान धर्मा है किन्तु चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से प्रमत्त बना हुआ है। यदि प्रमाद को अपने आगे से भगा दे तो उसे कल्याण करने में क्या देर है? ऐसा व्यक्ति कम विराधक और अधिक आराधक है।

एक व्यक्ति व्यापार में कुशल नहीं। भाग्य भी अनुकूल नहीं। साधन भी पास नहीं। परन्तु वह अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार परिश्रम बहुत करता है निशि वासर जुटा रहता है। धन कमाने में दिन रात एक कर देता है। किन्तु वह इतना कुछ करने पर भी धनवान नहीं बन सकता। इसी प्रकार जो उक्त व्यापारी की भांति क्रिया पर अधिक जोर देते हैं। दिन रात क्रिया में जुटे रहते हैं। किन्तु उन्हें धर्म का क ख ग भी नहीं आता उन की जीवन-प्रगति विघ्न बाधाओं से सदैव घिरी रहती है।

एसे पुरुष कम आराधक और अधिक विराधक होते हैं। क्यो कि वह अन्धा क्रिया करते है। दोनो का अन्तर स्पष्ट करते हुए एक सस्कृत का श्लोक हमारे सामने आता है जैसे कि —

क्रिया शून्यस्य यो भावो, भाव शून्या च या क्रिया।
अनयारन्तर दृष्ट भानुखद्योतयोरिव ॥

अर्थात क्रिया शून्य भाव (ज्ञान) और भाव (ज्ञान) शून्य क्रिया म सूर्य और खद्योत (जुगनु) जितना अन्तर होता है। भगवान महावीर ने फरमाया है —

पढम णाण तओ दया

(दशवकालिक)

पहले ज्ञान और फिर चारित्र —

याद रहे कि जिस दृष्टि का लक्ष्य ही ठोक नहो वह धर्म की सोलवी कला का भी स्पर्श नही कर सकता?

तत्थ ण जे से तच्चे पुरिस जाए
से ण पुरिसे सीलव उवरए विण्णाय धम्मे
एस ण गोयमा! मए पुरिसे सव्वाराहए पन्नत्ते।

तीसरे प्रकार का पुरुष वह है जो क्रियावान भी है और ज्ञानवान भी। धर्म के स्वरूप को जानता है और पाप से सर्वथा निवृत्त हो गया है। गौतम! वह पुरुष मेरे सिद्धान्त म सर्व आराधक कहा जाता है।

जिस पुरुष ने आत्म शुद्धि को अपने जीवन सर्वोच्च

पासंतो पगुलो दड्ढो
धावमाणो य अ धम्रो ।।

अर्थात् क्रिया हीन ज्ञान से कोई आत्म रक्षा नही कर सकता और ज्ञान विहीन क्रिया से भी कोई अपनी सुरक्षा नही कर सकता। जैसे कि संयोग से दावानल मे एक पगु और दूसरा अन्धा दोनो फस जाते है पगु देखता और जानता हुआ भी भाग कर नही निकल सकता और अन्धा भागता हुआ भी नही निकल सकता क्योकि उसे मार्ग नही दीखता दोनो ही आग के अर्पण हो जाते हैं। कोई भी अपने अभीष्ट तक नही पहुच पाता।

जैसे कि कहा भी है।

संयोगसिद्धि य फल वयंति
न हु एग चक्केण रहो पयाइ
अन्धो य पगू य वणे समेच्चा
ते सम्पउत्ता नयर पविट्ठा ।।

अर्थात जैसे एक चक्र से रथ नही चलता है दो से चलता है। जैसे अन्धा और पगु अलग २ जगल की आग से बच कर नही निकल सकते। हा दोनो मिल कर निकल सकते हैं, इसी तरह अकेला ज्ञान या अकेली क्रिया कुछ कर नही सकती। दोनो एक दूसरे के सहयोग से कार्यसिद्धि तक पहुच जाते हैं।

देखिये —

१—जीव और शरीर दोनो मिल कर क्रिया करते है।
२—पक्षी दोनो पाखो से उडता है एक से नही।

३—मछली दोनों पखों से तरती है।

४—रज और वीर्य दोनों से गर्भ ठहरता है।

५—आक्सीजन और हाईड्रोजन दोनों के संयोग से वृष्टि होती है एक से नहीं।

६—वस्त्र ताना और वाना दोनों से तयार होता है एक से नहीं।

७—चक्की के दोनों पाटों से पिसाई होती है एक से नहीं।

८—ऊखल और मूसल दोनों से कुट्टन होता है एक से नहीं।

९—टार्च और सेल दोनों से प्रकाश बिखरता है एक से नहीं।

१०—दोनों हाथों से ताली बजती है एक से नहीं।

११—घड़ी की दोनों सूईयों से समय का ज्ञान होता है एक से नहीं।

१२—नेगेटिव और पौजिटिव दोनों तारों के मिलाप से विद्युत की शक्ति काम करती है एक से नहीं।

१३—आलोक और चक्षु के संयोग से पदार्थ का ज्ञान होता है एक से नहीं।

ठीक इसी प्रकार ज्ञान और क्रिया सम्यक् मिलन से आत्म शुद्धि होती है एक से नहीं।

एक श्लोक देखिये —

त्वरित किं कर्तव्यं ? संसार सततिच्छेद
किं मोक्षतरोर्बीज ? सम्यग्ज्ञान क्रियासहित

अर्थात् शीघ्र क्या करना चाहिये ? संसार संतति का विनाश। मोक्ष वृक्ष का बीज क्या है ? सम्यक् ज्ञान पूर्वक क्रिया अर्थात् चारित्र ही मोक्ष तरु का बीज है।

इस कलाप में यह स्पष्ट है कि जीवन की नौका को आनन्द के अमर द्वारा पर ले जाने के लिये ज्ञान और चारित्र की दो पतवार होनी चाहिये। जिस से आत्मा शुद्धि का आस्वादन करने लग जाये समझो आप के भीतर चारित्र का उद्रेक हो रहा है। जिस समय आत्मा कर्म के धागों से बन्धी जा रही हो समझ लीजिए कि आप में सच्चारित्र का अभाव पाया जा रहा है। चारित्र क्या काम करता है इस पर एक उदाहरण लीजिए।

एक गन्दल पानी की गागर भरी पड़ी है। पानी और मिट्टी एक जान से हो रहे हैं। हम उस पानी को बिल्कुल स्वच्छ देखना चाहते हैं। और मिट्टी को एक दम अलग कर देना चाहते हैं। इस लिये हम उस में कतक चूर्ण या फटकड़ी डाल देते हैं। हम देखते हैं कि ऐसा करने से पानी और मिट्टी दोनों अलग २ हो जाते हैं ठीक इस प्रकार चारित्र भी कतक चूर्ण का काम करता है और यह जीवन में हलाहुआ आत्मा और कर्म को अलग २ कर देता है। चारित्र जितना भी प्रबल परिणामों से पाला जाएगा उतना ही साधक शीघ्र अपने अभीष्ट को पा जाता है। देखा जाता है कि एक पक्षी जितनी लगन इच्छा उत्सुकता और साहस ले कर उड़ता है। उतना ही शीघ्र वह अपने नीड़ में पहुंच जाता है। यही दशा एक साधक की होती है। उस के हृदय की लगन और

श्रद्धा उस अपना मंजिल पर शीघ्र ही पहुचा देती है । अत व साधक जो श्रुत ज्ञान और चारित्र म सम्पन्न होते हैं वे सव आराधक कहे जाते है। अब आगे चौथे प्रकार के साधक की भाषा दिखलाई जाती है।

तत्थ ण जे से चउत्थे पुरिस जाए
स ण पुरिस असीलव, असुयव, अणुवरए
अविण्णाय धम्मे। एस ण गोयमा! मए सव्व विराहए

पत्तन्नो -

वह पुरुष जो क्रिया से रहित हो और साथ ही ज्ञान स शून्य भी हो। अपनी वुद्धि स भी जिस न पाप का पल्ला नही छोड़ा और चारित्र धम का विज्ञाता भी नही है। वास्तव म जैन धम के अनुसार चारित्र ही धम है। और धम का दूसरा नाम स्वभाव है जसे कि कहा है —

वत्थु सहावो धम्मो।

वस्तु के स्वभाव को धम कहते हैं। विभाव परिणति म हट कर स्वभाव परिणति म आना ही धम है, याद रहे विभाव परिणति औदयिक भाव है और स्वभाव परिणति तीन प्रकार की होती है —

१—औपशमिक
२—क्षायोपशमिक
३—क्षायिक

जो सदव स्वभाव म रमण करता है वह क्षायिक भावस्थ है। जा एक बार स्वभाव परिणति की तरंगिणी मे तैरता है वह कभी विभाव भवर मे नही फसता। यह प्रकृति का अटल नियम है। अतएव जिस पुरुष न उक्त प्रकार के धम को जाना भी नही और पाप का परित्याग भी नही किया ऐसा पुरुष गौतम! सब विरायक कहा जाता है।

दो परिभाषाए —

कइ लाग समझते हैं कि सम्यक्त्वी का आराधक' और मिथ्यात्वी को विराधक कहा जाता है। वास्तव मे बात ऐसी नही है रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्ज्ञान दर्शन और चारित्र मे निरतिचार प्रवृति करने वाला साधक ही आराधक कहा जाता है। जो अनाचार सेवन करता है वह विराधक होता है। याद रहे जो सातिचार प्रवृत्ति करता है वह देश आराधक या देश विराधक कहा जाता है।

जिस ने कभी आज तक सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त किया ही नही। या जिस ने कभी स्वप्न म भी र नत्रय की झलक नहीं देखी। उस व्यक्ति के लिये आराधक और विराधक शब्दों का प्रयोग नही किया जा सकता। जो आरभ से ही आचार विमुख हो रहा है उसे उत्पथ गामी कह सकते हैं किन्तु उस पथ भ्रष्ट या भ्रष्टाचारी नही कह सकत। भ्रष्टाचारी तो वास्तव में वह है जो सत्पथ से उत्पथ पर आजाए।

एक व्यक्ति अनपढ है। अशिक्षित है। उस न फेल कह सकते हैं और न पास। इसी प्रकार एक एकान्त मिथ्यादृष्टि चाहे कितनी उत्तम साधना करता रहे और कितने ही दाव लगाता फिरे उस आराधक या विराधक कुछ भी नही कह सकते।

देखिए विश्व विद्यालय की परीक्षाए होती है तीन प्रकार

की जसे कि —

१—लैखिक
२—मौखिक
३—प्रायोगिक

१—एक विद्यार्थी वह है जिस न इन तीनो परीक्षाओ म तृतीय श्रेणी के योग्य अक प्राप्त किये।

२—दूसरा विद्यार्थी वह है जिस न दो परिक्षाओ मे स तो अधिक अक प्राप्त किये और तीसरी मे उत्तीण होने योग्य ही अक लिये, जिस से वह द्वितीय श्रेणी म उत्तीण हुआ।

तीसरा विद्याथी वह है जिस ने तीना म अधिकाधिक अक लिये और प्रथम श्रेणी मे उत्तीण हुआ।

चौथा भाग्य हीन वह विद्याथा है। जा तीना परीक्षाग्रा के अक मिला कर भी पास न हा सका।

अब जरा इस युक्ति को आध्यात्मिक माग पर घटा कर देखिये जीवन म प्रगति करन क लिय ही साधक रत्न त्रय अर्थात् ज्ञान दशन और चारित्र की आराधना करते हैं। किन्तु उन की उस आराधना म न्यूनाधिकता अवश्य रहती है जिस से व चार कोटियो मे विभक्त किय जा सकते है।

जसे कि —

पहले विद्यार्थी क समान	१	देश आराधक
दूसरे ,,	,,	२ देश विराधक
तीसरे ,,	,,	३ सव आराधक

चौथे „ , ४ सव विराधक

जसे चारा प्रकार के विद्यार्थी वि व विद्यालय के छात्र कहलाते हैं एस ही चारा प्रकार के व्यक्ति अहिंसा महाविद्यालय के साधक कह जाते हैं। भले ही कोई अपने दुर्भाग्य क कारण परीक्षा म अनुत्तीर्ण हो जाये और व सफलता के शुभ दर्शन न कर सके कुछ देर के लिय कि तु उस अशिक्षित या अनपढ तो नही कहा सकता न ? ठीक इसी प्रकार विराधक का अपनी साधना मे असफल हुआ तो कहा जा सकता है कि तु उसे मिथ्यादष्टि नही कह सकत ।

इस से सिद्ध हुआ कि एक पुरुष कवल विराधक होन स मिथ्या दृष्टि नही कहा ज सकता। और मिथ्या दष्टि चाहे ऊ चा करना कर चाहे नीचा उस न आराधक कहते है न विराधक! दखिये क्रियावादी के १८० मत हैं। उन मे म कोई दीक्षा लकर उच्च कोटी की साधना म जुट जाता है उस को भगवान ने परलोक का आराधक नहीं माना क्योंकि उस मे सम्यक्त्व रत्न का जन्म नही हुआ वे मिथ्यादष्टि है। उन की करनी कुछ मत्य नही रखता। यदि उपरोक्त क्रिया-वादियो मे से अपन विचार के अनुसार साधना करता २ मार्ग भ्रष्ट हो जाता है तो उस विराधक नही कहा जा सकता। एक बात और भी देखिये सप्त निह्नवो के अनुयायी श्रमण उत्कृष्ट क्रिया करते हुए नवग्रवेयक देव-विमानो के अधिपति बन जाते हैं कि इतना कुछ होने पर भी उन्हें विराधक ही कहा गया। कि तु जिस ने दव, गुरु और धम की अन्तरात्मा को समझ लिया है। ज्ञान दर्शन और चारित्र क मम को समझ कर जो जीवन की सच्ची साधना म

लगा हुआ साधक है वही वास्तव म आराधक कहा जाता है किन्तु जो अपने पथ पर डग भरते २ माया के जाल मे फस कर पथ विकल हो जाते है अपने अक्षुण्ण व्रता को जो दोषा के तीरा से आहत करते है और फिर —

गुप्त पाप प्रकट पुण्य

की उक्ति क अनुसार अपने पापो दोषा को अपन हृदय की पिटारी मे नागा की भाति छिपा कर रखते है और गुरु के समक्ष अपन दोषो की आलोचना नही करते। उस का प्रायश्चित नही लेते। अपनी भूला का सुधार नही करते वे भगवान के शासन म विराधक कह जाते है।

अत सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दशन पूर्वक चारित्र का पालन करना चाहिये तभी मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बन सकता है।

एक शका -

कई लोग कहते हैं कि ज्ञान सब दु खो का मूल है और सब अनर्थो की जड है। ज्ञान जितना अधिक होगा उतना दुखी भी अधिक होगा। ज्ञानी को सब दु ख चिपटे रहते हैं। अज्ञानी को कोई दु ख नही होता, जसे कोई आदमी अपने घर म आराम से बठा हैं उस की कही दूर देश म किसी प्रकार [illegible] हानि हो जाती है। मानो कही व्यापार मे नुकसान [illegible] या कोई मुकद्दमा ही हार जाता है। जब तक [illegible] ज्ञान नही होगा तब [illegible] की भोक सकती। उस का [illegible] अर्थात अपने [illegible] वह

हो उठेगा। उस के कोमल मानस को जो गहरा आघात पहुँचेगा वह सब कुछ ज्ञान होने के बाद ही हुआ। तो ज्ञान ही दुःख की खान है।

किसी व्यक्ति को जब कोई अच्छा समाचार जानने मे आता है तो वह खुशी से बाग बाग हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञान राग और द्वेष को जन्म देता है ज्ञान जितना भी कम होगा द्वेष भी उतना ही कम होगा। राग द्वेष कम होगा उतना दुःख भी कम प्रतीत होगा।

यह एक गाथा है किन्हीं एक बुद्धि के धनियों की यह कुछ विक्षिप्त बुद्धि वालों का ज्ञान पर सीधा प्रहार है। जो सरासर भ्रान्ति मूलक है।

समाधान –

पहले तो हम अज्ञान वादियों से पूछते हैं कि आप जो कहते हैं कि ज्ञान से दुःख और अज्ञान से सुख मिलता है यह बात आप अपने ज्ञान से कहते हैं कि अज्ञान से। यदि यह आप अपनी बुद्धि से विचार कर सोच समझ कर कहते हैं। तो आप के अज्ञान वाद की जड़ आप की अपनी कुल्हाड़ी से ही कट जाती हैं। यदि बिना बुद्धि और विचार के सिद्धान्त बना डाला है तब आप के सिद्धान्त कोई मान्य नही कर सकता क्या कि बिना बुद्धि और विचार की बात सत्य नहीं हो सकती इस लिये अज्ञानवाद किसी भी तरह खड़ा नही रह सकता।

अब हम उपयुक्त शंका का समाधान [illegible] से करते हैं। क्रिया दो प्रकार की होती

१—ज्ञप्ति क्रिया
२—ज्ञेयार्थ परिणमन क्रिया

राग द्वेष से रहित जानना ज्ञप्ति क्रिया कही जाती है राग द्वेष सहित जानना ज्ञेयार्थ परिणमन क्रिया कहलाती है। इस मे से प्रथम क्रिया बध और दुख का कारण नही होती। द्वितीय क्रिया राग द्वेष मूलक होने से बध और दुख की परम्परा को सीचने वाली है।

मोह और अज्ञान के कारण यह मनुष्य उन्मत्त सा हो रहा है। जब यह मिथ्यात्व मे उलझ जाता है तो असत मे सत बुद्धि रखता हुआ ससार के ज्ञेय पदार्थों मे परिणमन करता है। कालान्तर मे यह ही भोग इस के लिये दुख का कारण बन जाते है। और उन भोगो का अशुद्ध ज्ञान परिणमन भी जीव के लिये दुख का मूल बन जाता है किन्तु यह सारा वभाविक परिणमन और तज्जन्य दुख घातिक कर्मो के सयोग मे उत्पन्न होता है। जहा घातिक कर्मो का अभाव होता है वहा वभाविक परिणमन भी आत्मा का नही होता और न ही दुख और खेद होता है। कारण के अभाव से कार्य का भी अभाव देखा जाता है। जब बास ही नही तो बासुरी कसे बजे।

जो ज्ञान परत है वह दुख का कारण हो जाता। परत ज्ञान परोक्ष होता है।

कहा भी जाता है —

आद्ये परोक्षम्

त त्वार्थ सूत्र अ० १,

मति और श्रुत ज्ञान और अज्ञान ये दोनो परोक्ष है।

परोक्ष ज्ञान –

जो ज्ञान मन और इन्द्रियो की सहायता से पर उपदेश से, पूर्व के अभ्यास और संस्कार से उत्पन्न होता है। वह परोक्ष ज्ञान कहा जाता है परोक्ष ज्ञान परत उत्पन्न होता है सावरण सवृत्ति और समल होता है यह ज्ञान अवग्रह ईहा अवाय धारणा रूप होता है ऐसा क्षयोपशम जन्य ज्ञान परोक्ष ज्ञान कहा जाता है।

जो ज्ञान पराधीन हो वह आकुलता का कारण होता है। जहां आकुलता है विक्षुब्धता है वहा पर ज्ञेयाय परिणमन क्रिया है और यही क्रिया बध का कारण है इस के अतिरिक्त जो ज्ञान स्वत से और स्वय जात है परिपूर्ण है निरावरण और निर्मल है अवग्रह आदि से रहित है। असीम और अनन्त है सब द्रव्य और सब पर्याय जिस का विषय है क्षायिक भाव जन्य है। इत्यादि विशेषणो से युक्त है वह केवल ज्ञान है, केवली घातिक कर्मों का विजेता होता है इस लिये उन का परिणमन सद और दुख का कारण नही होता। केवली ज्ञप्ति क्रिया करता है। अत उस ज्ञान से कर्म बध कदापि नही होता।

रत्नत्रय की आराधना -

भाव जगत बड़ा विचित्र है। मन के भाव असख्यात प्रकार के हो सकते हैं। चाहे वे कितने भी प्रकार के हो, आखिर उन को तीन भागो मे विभक्त किया जा क

१—नप्ति क्रिया
२—न पार्थ परिणमन क्रिया

राग द्वेष से रहित जानना नप्ति क्रिया कही जाती है राग द्वेष सहित जानना न याथ परिणमन क्रिया कहलाती है । इन म स प्रथम क्रिया व ध और दुख का कारण नही होती । द्वितीय क्रिया राग द्व प मूलक होने से वध और दुख की परम्परा को सीचन वाली है।

मोह और अनान क कारण यह मनुष्य उन्मत्त सा हो रहा है। जब यह मिथ्यात्व म उलझ जाता है तो असत मे मत बुद्धि रखता हुआ ससार के ज्ञय पदार्थो म परिणमन करता है। कालान्तर म यह ही भाग दुस के लिय दुख का कारण बन जाते है। और उन भोगो का अशुद्ध ज्ञान परिणमन भी जीव के लिये दुख का मूल बन जाता है कि तु यह सारा वभाविक परिणमन और तज्ज य दुख घातिक कर्मो के सयाग मे उत्पन्न होता है । जहा घातिक कर्मो का अभाव होना है वहा वभाविक परिणमन भा आत्मा का नही होता और न ही दुख और खेद होता है। कारण के अभाव स काय का भी अभाव देखा जाता ह । जब बास ही नही तो बासुरी कसे बजे।

जो नान परत है वह दुख का कारण हो जाता । परत नान पराक्ष हाता है।

कहा भी जाता है —

आद्ये परोक्षम

तत्वार्थ सूत्र अ० १

मति और श्रुत नान और अनान ये दाना परोश है।

परोश नान –

जा नान मन और इन्द्रिया की सहायता म पर उपदेश स, पूव के अभ्यास और सस्वार से उत्पन्न होता है। वह परोश नान कहा जाता है पराक्ष नान परन उत्पन्न होता है मावरण सकुचित और समन होता है। यह नान अवग्रह दहा अवाय धारणा रूप होता है एसा क्षयापशम जय नान पराश्र जा कहा जाता ह।

जा नान पराधान हो वह आकुलता का कारण होता है। जहा आकुलता ह विक्षुब्धता है वही पर नयाथ परिणमन क्रिया है और यह क्रिया बध का कारण है इस क अतिरिक्त जा नान स्वत त्र और स्वय जात है परिपूण है निरावरण और निमल है अवग्रह आदि स रहित है। असोम और अनत है, सव द्रय और सव पयाय जिस का नय है क्षायिक भाव ज य है। इत्यादि विशषणा स युक्त है वह क्वल नान है, कवली घातिक कर्मो का विजेता होता है इस लिये उन का परिणमन खद और दुख का कारण नही होता। क्वली नप्ति क्रिया करता है। अत उस नान से कम ब ध कदापि नही होता।

रत्नत्रय की आराधना -

भाव जगत बडा विचित्र है। मन के भाव असख्यात प्रकार के हो सकते हैं। चाहे वे कितने भी प्रकार के हो जाय आखिर उन को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है —

१—उत्कृष्ट
२—मध्यम
३—जघन्य

ज्ञान, दर्शन और चारित्र भी आत्मिक भाव है इन में भी तर, तम भाव रहता है। इस स य आत्म नाव भी उपयुक्त तीन कोटियों म म हो कर जाते हैं जसे कि—

१—उत्कृष्ट ज्ञानाराधना के साथ उत्कृष्ट और मध्यम दर्शनाराधना रह सकती है किन्तु जघन्य नहीं।

२—उत्कृष्ट दर्शन आराधना क उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ज्ञानाराधना हो सकती ह।

३—उत्कृष्ट चारित्र आराधना क सग उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ज्ञानाराधना हो सकती है।

४—उत्कृष्ट दर्शन आराधना के साथ उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य चारित्र आराधना हो सकती है। किन्तु स्मृति पथ पर रहे, जिस की चारित्र आराधना उत्कृष्ट है उस की दर्शन आराधना नियमन अर्थात अवश्य ही उत्कृष्ट होती है।

कई भावुक आत्मा उत्कृष्ट ज्ञानाराधना से उसी भव मे सिद्ध गति प्राप्त कर लते है। कई दूसरे जन्म म अपने निःश्रेयस की सिद्धि करते हैं। यदि दो जन्मो मे काय सिद्धि ना हो तो देवलोकों म देवत्व रूप म समय बिता कर फिर तीसरे भव म तो अवश्य ही मोक्ष धाम प्राप्त कर लेते हैं। उत्कृष्ट दर्शन और चारित्र की पावन आराधना से भी जीव तीसरे भव मे तो अवश्य मुक्त हो जाता है।

मध्यम ज्ञान दर्शन और चारित्र की आराधना करने वाले कम से कम दूसरे और अधिक से अधिक तीसरे भव में मोक्ष मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं।

रत्न त्रय (ज्ञान दर्शन और चारित्र) की जघन्य आराधना करने से कम से कम तीसरे और अधिक से अधिक सात और आठ भवों में मोक्ष के अक्षय सुख का आस्वादन कर सकते हैं—

सत्तट्ठभवग्गहणाइ पुणनाइक्कमइ

भगवती० श० ८ उ० १०

अर्थात जिसने ज्ञान दर्शन और चारित्र की जघन्य आराधना ही की है वह सात आठ भवों का अतिक्रमण नहीं करता या यू कहिए कि वह सातवें या आठवें भव में अवश्य मोक्ष की परम गति का स्वामी बन जाता है।

शंका –

यहां शंका की जा सकती है कि सात आठ का वाक्य शंका का जनक है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी अल्पज्ञ की उक्ति हो। क्योंकि साधारण अल्पज्ञ मनुष्य अपने अनुमान से कह दिया करता है कि वहां तो केवल सात आठ आदमी बैठे हैं? गणना ठीक न करने के कारण यह सात और आठ का प्रयोग करता है? क्यों कि वह अल्पज्ञ है परन्तु भगवान महावीर तो सर्वज्ञ हैं। उन्होंने यह सूत्र में अल्पज्ञ जैसी बात क्यों कही! भगवान की वाणी सन्देहात्मक नहीं होनी चाहिये। विरोधी वचन सर्वज्ञता के दूषण हैं। इस शंका का आप

समाधान करगे ।

लाजिय इस का स्पष्टीकरण यह है —

स्पष्टीकरण –

आप जानत हा है कि जन धम एक स्याद्वादा धम है। यह एकान्तवाद का आश्रय कभी भी नही लेता वह प्रश्न का उत्तर अनेकान्त वाद के प्रकाश म देता है। कई लोगा का विचार है कि अनेकान्तवाद एक सदेहात्मक सिद्धान्त है । क्या कि इस के द्वारा किया हुआ विचार भा के गिद घूमता रहता है और कोई ठास अन्तिम निणय नही हा पाता । एस भी है और वमे भा है कहन से कोई निणय तो न हुआ । और न ही ज्ञान हो सका कि ठीक क्या है ? इस लिये अनेकान्त सिद्धान्त वस्तु का निणय नही कर सकता ।

इस शका का समाधान यू है —

जसे विराधाभास अलकार म पाठक को पदा मे और उस के अथ म विरोध प्रतीत हाता है किन्तु वस्तुत विरोध होता नही पद और अथ को ठीक २ समझ लन के बाद विरोध नही जान पडता । अनेकान्त वाद म भी एकान्त वादियो को विरोध भासता है किन्तु अनेकान्त का यथाथ स्वरूप समझ लने पर विरोध जाता रहता है। वस्तु का सत्य स्वरूप दिखाई दने लग जाता है।

ऊपर जो सात और आठ भवो की बात कही है इस मे विरोध नही और न इस मे सन्देह रखना ही चाहिए क्यो कि इस पाठ का यह भाव नही —

कि ज्ञान, दशन और चारित्र की जघन्य आराधना करने वाला शायद सातव भव मे मोक्ष जाता है या शायद आठवें मे।'

बल्कि इस का सत्य भाव तो निम्न प्रकार से है

कि ज्ञान, दशन और चारित्र की जघन्य आराधना करने वाले सातवें भव मे भी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं और यदि वहा किसी कारण वश मोक्ष सिद्धि न हो सके तो आठवें भव म तो अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लगा यह एक नियम है। आठवें जन्म से पहले सातव भव म भी निश्रेयस की प्राप्ति हो सकती है। और आठवें मे भी। ये दोनों बातें निश्चात्मक रूप से कही जा रही है।

सात आठ भवा के अनेक भाग बन सकते हैं किन्तु उन सब का लिखना केवल पुस्तक क कलेवर बढाना है। किन्तु समाधान के लिये समझ लीजिये —

कई साधक इस जन्म मे रत्नत्रय की जघन्य आराधना करते हैं वे इस भव क साथ एक २ भव का अन्तर डाल कर तीन जन्म देवलाक के और चार जन्म मनुष्य के धारण करते हैं और मनुष्य के चौथे जन्म म साधना करके सिद्ध गति के अधिपति बन जाते हैं यह तो हुई सातवें भव में मोक्ष प्राप्त करने की बात अब दूसरी ओर चलिये —

कई एक साधक उक्त प्रकार से ७ भव लेकर सातव मनुष्य के जन्म मे फिर मनुष्यायु बाध कर आठवें भव मे सिद्धत्व लाभ करते हैं इस प्रकार और भी अनेकों विकल्प हो सकते है जो विस्तार भय से यहा देना उचित नही समझा

गया। इस प्रकार सातवें और आठवें दोनों भवों मे सिद्धत्व प्राप्त करने की संभावना हो सकती है। केवल इतना ही सदाशय है भगवान महावीर का —

इस उपयुक्त चतुर्थ प्रकरण मे दर्शाया गया है कि सम्यग्ज्ञान दर्शन पूर्वक चारित्र की आराधना ही सच्ची क्रिया है। जिस का दिग्दर्शन क्रियावाद के इस चतुर्थ प्रकरण में कराने का प्रयत्न किया गया है।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
2	6	सहानभाव	महानुभाव
2	11	समचीन	समीचीन
3	3	शब्द	शब्द
5	16	आस्तित्व	अस्तित्व
6	12	सहस्त्र	सहस्र
7	13	परमाण	परमाणु
8	7	रफूर्ति	स्फूर्ति
8	8	दृश्या	दृश्यो
8	15	आस्तित्व	अस्तित्व
9	5	स्वीकार	स्वीकार
9	15	आस्तित्व	अस्तित्व
10	1	अनित्य	अनित्य
10	11	परुष	पुरुष
11	1	सयम	सयम
11	14	सयय	समय
12	11	ता	तो
15	13	हो	ही
15	14	अविभाव	आविर्भाव
16	15	सकट	संवर
17	10	पढ़ा	
17	12	तुमे	

गया। इस प्रकार सातवें और आठवें दोना भवो मे सिद्धत्व प्राप्त करने की सभावना हो सकती है। केवल इतना ही सदाशय है भगवान महावीर का —

इस उपयुक्त चतुथ प्रकरण में दर्शाया गया है कि सम्यग्ज्ञान, दर्शन पूवक चारित्र की आराधना ही सच्ची क्रिय है। जिस का दिग्दशन क्रियावाद के इस चतुथ प्रकरण म कराने का प्रयत्न किया गया है।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
2	6	महानभाव	महानुभाव
2	11	समचीन	समीचीन
3	3	शब्द	शब्द
5	16	ग्रास्तित्व	ग्रस्तित्व
6	12	सहस्त्र	सहस्र
7	13	परमाण	परमाणु
8	7	रफूर्ति	स्फूर्ति
8	8	दृश्या	दृश्यो
8	15	ग्रास्ति॰व	ग्रस्तित्व
9	5	स्वीकार	स्वीकार
9	15	ग्रास्तित्व	ग्रस्तित्व
10	1	ग्रनि॰य	ग्रनित्य
10	11	परुप	पुरुष
11	1	सयम	सयम
11	14	सयय	समय
12	11	ता	तो
15	13	हो	ही
15	14	ग्रविभाव	ग्राविर्भाव
16	15	सकट	सवर
17	10	पहा	पहा रहा
17	12	तुमे	तुम्हे

पृष्ट	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
17	17	सव	सव
19	17	ज्ञानवरणीय	ज्ञानावरणीय
20	13	सपूण्	सम्पुण
23	11	अटपटी वान	अटपटी बात
36	12	सत	सत्
27	19	सनातनो	सनातनी
31	7	वातराता	वीतरागता
31	10	ईश्वर	ईश्वरत्व
31	18	श्य	शू य
31	19	निर्विवाद	निविदाद
34	6	गुणा	गुणो
34	14	कोपूण रूपेण	को पूणरूपेण
35	4	उव्दोघन	उद्बाधन
38	14	कम घम	धम-धम
40	9	मीमासा	मीमासा
42	1	अपन	अपने
43	19	o	पुद्गल
44	11	भा	भी
45	17	जव	जव
47	21	अणउढ	अणडढे
48	14	दाति	दीत
49	16	ह्रास	ह्रास
50	20	Changenqs	Change
62	2	रहना	रहती है
62	15	अनन्त	अनन्तव्यवहार
63	10	सभव	सम्भव

पृष्ट	पंक्ति	शुद्ध	शुद्ध
64	4	निमित	निमित्त
73	12	सभव गणाग्रा	सम वगणाग्रा
74	4	अनुरजित	अनुरजित
79	12	स्यलानसार	स्यलानुसार
86	21	दर्शन	दशन
87	7	द र्शन	दशन
97	6	अन	अत
97	9	बीत	बात
97	10	ज्यातिमय	ज्योतिमय
99	20	सागरापम	सागरोपम
100	9	अनपवत्यायु	अनपवर्त्यायु
104	10	पण	पूण
105	'0	तभा	तभी
105	11	काम	काय
105	18	सक्षिप्त	सक्षिप्त
,07	3	इतती	इतनी
109	24	स्वभा	स्वभाव
108	1	निवत	निवृत्त
'08	10	बुद्धि से	अपनी बुद्धि स
109	4	सचारू	सुचारू
109	1	अयाणतो	अयाणता
109	13	समय	सयम
112	1	अराधक	आराधक
112	6	दष्ट	दृष्ट
112	10	पढम	पढम

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
114	8	माग	माग
115	15	विद्यत	विद्युत
116	3	भोक्ष	मोक्ष
116	8	क्रम	कम
121	20	निह्रवो	निह्नवो
122	5	पूण्य	पुण्य
122	9	प्रायच्चित	प्रायश्चित
124	2	ज्ञेपाथ	ज्ञेयाथ
128	4	स्याहृवादी	स्याद्वादी